ओ३म्

ऋषि दयानन्द ने कहा था...

ओ३म्

वेद विषयक संस्कृत भाषणोपलक्ष तथा वैदिक मन्त्रोच्चारी वाद-विवाद प्रतियोगिता के पुण्य स्थली में पुरस्कृत किये जाने योग्य प्रिय पुत्री मञ्जरी कुमारी आर्या को गुरुदेव दयानन्द की यह अमृत मयी वाणी-युक्त पुस्तिका पितृवत तपस्वी आर्य निवासी - नरकटियागंज (चम्पारण) बिहार की ओर से सस्नेह भेंट है।

तपस्वी

वैशाख शुक्ल चतुर्थी तिथि सोमवार

सृष्टि संवत १, ९७, २९, ४९, ०७६ वाँ वर्ष

दिनाँक- ३।५।१९७६

गायत्री महायज्ञ स्थल - ग्राम - बेलवा

— चम्पारण (बिहार)

॥ ओ३म् ॥

ऋषि दयानन्द ने कहा था....
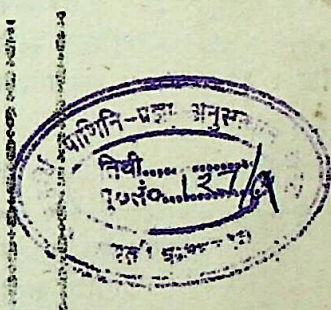
महर्षि दयानन्द की प्रेरक सूक्तियों का अभूतपूर्व संग्रह

जन-ज्ञान प्रकाशन
नई दिल्ली-५

दूरभाष : ५६६६

प्रकाशक :
दयानन्द संस्थान

१५६७, हरध्यानसिंह मार्ग
नई दिल्ली-५

सम्पादक
पंडिता राकेशरानी

जुलाई : १९७५ प्रथम संस्करण मूल्य : १.४

मुद्रक :
भाटिया प्रेस, गुरु नानक गली, गांधीनगर, दिल्ली-३१

अनुपमेय

गुरुदेव देव दयानन्द ने जो कुछ कहा था—उस का अंश भी यदि आचरण में आ जाए तो यह धरती स्वर्ग बन जाए।

ज्ञान-सत्य, धर्म, अध्यात्म, राजनीति और गृहस्थादि जीवन के सभी अंगों पर ऋषि के विचार मानव मात्र का ऐसा मार्ग दर्शन कर रहे हैं जिनकी छाया में मानव जाति निरन्तर आनन्द प्राप्त कर सकती है।

साधना का क्षेत्र हो या भौतिकता का, सभी में देव दयानन्द ने अपनी अलौकिक प्रतिभा का परिचय दिया है।

हम प्रस्तुत पुस्तक में उनके महान् ग्रंथों से चुनकर कुछ ज्ञान मोती जन-जन के प्रति अर्पित कर रहे हैं।

हमें विश्वास है कि इनसे प्रेरणा पाकर पाप पंक-अज्ञान में सिसकती काली छाया ज्ञान की रश्मियों से नयी शक्ति प्राप्त कर हर्ष-उल्लास-उमंग अनुभव कर सकेगी।

प्यार और स्नेह का समुद्र दयानन्द के अन्तर में ममत्व की गंगा बहा रहा है—

आइए हम भी स्नान कर अपना जीवन धन्य बनाएं—

राकेश रानी पंडिता
मंत्री
१-७-७५

दयानन्द संस्थान
नई दिल्ली-५

नवयुग प्रवर्तक-वेदोद्धारक-धर्मरक्षक
महर्षि दयानन्द सरस्वती
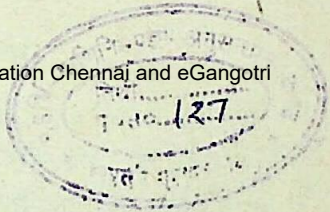
१-सत्य का स्वरूप

सत्य का स्वरूप और सत्यार्थ का ग्रहण करना

जो पदार्थ जैसा है उसको वैसा ही कहना, लिखना और ानना सत्य कहाता है। विद्वान् आप्तों का यही मुख्य काम है कि पदेश वा लख द्वारा सब मनुष्यों के सामने सत्यासत्य का स्वरूप मर्पित कर दें, पश्चात् वे स्वयं अपना हिताहित समझकर त्यार्थ का ग्रहण और मिथ्यार्थ का परित्याग करके सदा आनन्द रहें। (स० प्र० भूमिका)

विद्वान् एकमत हो प्रीति से वर्तें

यद्यपि आजकल बहुत से विद्वान् प्रत्येक मतों में हैं, वे पक्ष-त छोड़, सर्वतन्त्र सिद्धांत अर्थात् जो-जो बातें सबके अनुकूल सब सत्य हैं, उनका ग्रहण और जो एक दूसरे के विरुद्ध बातें हैं, उनका ाग कर परस्पर प्रीति से वर्तें वर्तावें तो जगत् का पूर्ण हित होवे। ोंकि विद्वानों के विरोध से अविद्वानों (साधारण जनों) में रोध बढ़कर अनेकविध दुःख की वृद्धि और सुख की हानि ती है। (स० प्र० भू०)

मिथ्या बात के प्रचार से अनर्थ बढ़ता है

जो मिथ्या बात न रोकी जाए तो संसार में बहुत से अनर्थ ृत्त हो जायँ। —(स० प्र० भू०)

न्यायकारी

जो सदा विचार कर असत्य को छोड़ सत्य का ग्रहण करे अन्यायकारियों को हटावे और न्यायकारियों को बढ़ावे, अपने आत्मा के समान सबका सुख चाहे सो "न्यायकारी" है, उसको मैं भी मानता हूँ ।

(स्व० म० ...

सत्य और असत्य क्या है ?

जो-जो ईश्वर के गुण, कर्म, स्वभाव और वेदों से अनुकूल वह-वह सत्य और उससे विरुद्ध असत्य है । जो-जो सृष्टिक्रम के अनुकूल वह-वह सत्य और जो-जो सृष्टिक्रम से विरुद्ध है वह-वह असत्य है, जैसे कोई कहे कि विना माता-पिता के योग से लड़का उत्पन्न हुआ ऐसा कथन सृष्टिक्रम से विरुद्ध होने से सर्वथा असत्य है ।

(स. प्र. स.

उन्नति का कारण सत्योपदेश

जिससे मनुष्य जाति की उन्नति और उपकार हो, सत्यासत्य को मनुष्य लोग जानकर सत्य का ग्रहण और असत्य का परित्याग करें, क्योंकि सत्योपदेश के विना अन्य कोई भी मनुष्य जाति की उन्नति का कारण नहीं है ।

(स० प्र०

मनुष्य जन्म सत्यासत्य निर्णय हेतु

मनुष्य का जन्म सत्यासत्य का निर्णय करने कराने के लिए है न कि वादविवाद, विरोध करने कराने के लिए । इसी मतमतान्तर के विवाद से जगत में जो-जो अनिष्ट फल हुए, होते हैं और होंगे, उनको पक्षपातरहित विद्वज्जन जान सकते हैं । जब

स मनुष्य जाति में परस्पर मिथ्या मतमतान्तर का विरुद्ध वाद न छूटेगा तब तक आन्योन्य को आनन्द न होगा। यदि हम सब मनुष्य और विशेष विद्वज्जन ईर्ष्या—द्वेष, छोड़ सत्यासत्य का निर्णय करके सत्य का ग्रहण और असत्य का त्याग करना कराना चाहें तो हमारे लिए यह बात असाध्य नहीं है।

(स० प्र० म० ११वां समु०)

सत्य का विजय

सर्वदा सत्य का विजय और असत्य का पराजय और सत्य से ही विद्वानों का मार्ग विस्तृत होता है। इस दृढ़ निश्चय के आलम्बन से आप्त लोग परोपकार करने से उदासीन होकर कभी सत्यार्थ प्रकाश करने से नहीं हटते।

(स० प्र०)

उन्नति का कारण

जो मनुष्य पक्षपाती होता है। वह अपने असत्य को भी सत्य और दूसरे विरोधी मत वाले के सत्य को भी असत्य सिद्ध करने में प्रवृत्त होता है, इसलिए वह सत्य मत को प्राप्त नहीं हो सकता।

सत्योपदेश के विना अन्य कोई भी मनुष्य जाति की उन्नति का कारण नहीं है। सत्य के ग्रहण करने और असत्य के छोड़ने में सर्वदा उद्यत रहना चाहिए।

(—आ० स० नियम)

२—विद्याध्ययन

माता-पिता का परम कर्त्तव्य

यही माता,पिता का कर्त्तव्य कर्म, परमधर्म, और कीर्ति का काम है जो अपने संतानों को तन, मन, धन, विद्या, धर्म, सभ्यता और उत्तम शिक्षायुक्त करना। (स० प्र० स० २)

विद्या ही आभूषण है

सन्तानों को उत्तम विद्या, शिक्षा, गुण, कर्म, स्वभावरूप आभूषणों का धारण कराना माता, पिता, आचार्य और सम्बन्धियों का मुख्य कर्म है। (स० प्र० स० ३)

अनिवार्य शिक्षा

यह राजनियम और जाति (समाज) नियम होना चाहिए कि पांचवें अथवा आठवें वर्ष से आगे कोई अपने लड़कों और लड़कियों को घर में न रख सके। पाठशाला में अवश्य भेज देवें, जो न भेजे वह दण्डनीय हो। (स० प्र० स० ३)

सभी वर्ण के नर-नारियों में विद्या और धर्म का प्रचार आवश्यक

जो ब्राह्मण हैं वे ही केवल विद्याभ्यास करें और क्षत्रियादि न करें तो विद्या, धर्म, राज्य और धनादि की वृद्धि कभी नहीं हो सकती। क्योंकि ब्राह्मण तो केवल पढ़ने-पढ़ाने और क्षत्रियादि से जीविका को प्राप्त होके जीवन धारण कर सकते हैं जीविका के आधीन और क्षत्रियादि के आज्ञादाता और यथाव

परीक्षक दण्डदाता न होने से ब्राह्मणादि सब वर्ण पाखण्ड ही में फंस जाते हैं और जब क्षत्रियादि विद्वान् होते हैं तब ब्राह्मण भी अधिक विद्याभ्यास और धर्मपथ में चलते हैं और उन क्षत्रियादि विद्वानों के सामने पाखण्ड, झूठा व्यवहार भी नहीं कर सकते और जब क्षत्रियादि अविद्वान् होते हैं तो वे जैसा अपने मन में आता है वैसा ही करते कराते हैं। इसलिए ब्राह्मण भी अपना कल्याण चाहें तो क्षत्रियादि को वेदादि सत्यशास्त्र का अभ्यास अधिक प्रयत्न से करावें। क्योंकि क्षत्रियादि ही विद्या, धर्म, राज्य और लक्ष्मी की वृद्धि करनेहारे हैं, वे कभी भिक्षावृत्ति नहीं कर सकते, इसलिए वे विद्याव्यवहार में पक्षपाती भी नहीं हो सकते। और जब सब वर्णों में विद्या सुशिक्षा होती है तब कोई भी पाखण्ड रूप, अकर्म युक्त मिथ्या व्यवहार को नहीं चला सकता। इससे क्या सिद्ध हुआ कि क्षत्रियादि को नियम में चलाने वाले ब्राह्मण और संन्यासी तथा ब्राह्मण और संन्यासी को सुनियम में चलाने वाले क्षत्रियादि होते हैं। इसलिए सब वर्णों के स्त्री-पुरुषों में विद्या और धर्म का प्रचार अवश्य होना चाहिए।

(स० प्र० स० ३)

सब वर्णों के स्त्रीपुरुष को वेद पढ़ने का अधिकार है

सब स्त्री-पुरुष अर्थात् मनुष्य मात्र को वेद पढ़ने का अधिकार है। क्या परमेश्वर शूद्रों का भला करना नहीं चाहता ? क्या ईश्वर पक्षपाती है ? कि वेदों के पढ़ने-सुनने के शूद्रों के लिए निषेध और द्विजों के लिए विधि करे ? जो परमेश्वर का अभिप्राय शूद्रादि के पढ़ाने-सुनाने का न होता तो इनके शरीर में वाक् और श्रोत्र इन्द्रिय क्यों रचता ?

(स० प्र० स० ३)

सब स्त्री-पुरुषों को अपने-अपने व्यवहार की विद्या अवश्य पढ़नी चाहिए

जैसे पुरुषों को व्याकरण, धर्म और अपने व्यवहार की विद्या

न्यून से न्यून अवश्य पढ़नी चाहिए वैसे स्त्रियों को भी व्याकरण, धर्म, वैद्यक, गणित, शिल्प विद्या तो अवश्य ही सीखनी चाहिए।

(स० प्र० स० ३)

विद्या के कोष की रक्षा व वृद्धि राजा व प्रजा करें

वे ही धन्यवादार्ह और कृत-कृत्य हैं कि जो अपने सन्तानों को ब्रह्मचर्य, उत्तम शिक्षा और विद्या से शरीर और आत्मा के पूर्ण बल को बढ़ावें जिससे वे सन्तान मातृ, पितृ, पति, सास, श्वसुर, राजा प्रजा, पड़ोसी, इष्ट मित्र और सन्तानादि से यथायोग्य धर्म से वर्त्तें। यही कोष अक्षय है, इसको जितना व्यय करे उतना ही बढ़ता जाये, इस कोष की रक्षा और वृद्धि करने वाला विशेष राजा और प्रजा भी है।

(स० प्र० स० ३)

राजा और प्रजा सब लड़के-लड़कियों को विद्वान् बनाने का प्रयत्न करें

आजकल के सम्प्रदायी और स्वार्थी ब्राह्मण आदि जो दूसरों को विद्या-सत्संग से हटा और अपने जाल में फँसाके उनका तन, मन, धन नष्ट कर देते हैं और चाहते हैं कि जो क्षत्रियादि वर्ण पढ़कर विद्वान् हो जायेंगे तो हमारे पाखंड जाल से छूट और हमारे छल को जानकर हमारा अपमान करेंगे। इत्यादि विघ्नों को राजा और प्रजा दूर करके अपने लड़कों और लड़कियों को विद्वान् करने के लिए तन, मन, धन से प्रयत्न किया करें।

(स० प्र० स० ३)

विद्या की प्रगति कैसे ?

वर्णोच्चारण, व्यवहार की बुद्धि, पुरुषार्थ, धार्मिक विद्वानों का संग, विषय कथा-प्रसंग का त्याग, सुविचार से व्याख्या आदि शब्द, अर्थ और सम्बन्धों को यथावत् जानकर उत्तम क्रिया करके सर्वथा साक्षात् करता जाय। जिस-जिस विद्या के कारण जो-जो साधनरूप

सत्यग्रन्थ है उन उनको पढ़कर वेदादि पढ़ने के योग्य ग्रन्थों के अर्थों को जानना आदि कर्म शीघ्र विद्वान् होने के साधन हैं। (व्य० भा०)

मूर्ख के लक्षण

जो किसी विद्या को न पढ़ और किसी विद्वान् का उपदेश सुन कर बड़ा घमण्डी दरिद्र होकर धनसम्बन्धी दरिद्र होकर धनसम्बन्धी बड़े-बड़े कार्यों की इच्छा वाला और बिना किये बड़े-बड़े फलों की इच्छा करनेहारा है। (व्य० भा०)

पंडित किसे कहें ?

जिसकी सुनी हुई और पठित विद्या अपनी बुद्धि के सदा अनुकूल और बुद्धि और क्रिया सुनी पढ़ी हुई विद्याओं के अनुसार जो धार्मिक श्रेष्ठ पुरुषों की मर्यादा का रक्षक और दुष्ट डाकुओं की रीति को विदीर्ण करनेहारा मनुष्य है, वही पण्डित नाम धराने के योग्य है।
(व्य० भा०)

पठन-पाठन की विधि

पठन-पाठन आदि में लड़कों और लड़कियों को ऐसी शिक्षा देनी चाहिए कि वे स्थान और प्रयत्न के योग से वर्णों का ऐसा उच्चारण कर सकें कि जिससे सबको प्रिय लगे। जैसे (स) इसके उच्चारण में दो प्रकार का ज्ञान होना चाहिए एक स्थान और दूसरा प्रयत्न का। पकार का उच्चारण ओठों से होता है, परन्तु दो ओठों को ठीक-ठीक मिला ही के पकार बोला जाता है। इसका ओष्ठ स्थान और स्पष्ट प्रयत्न है और जो किसी अक्षर के स्थान में कोई स्वर वा व्यंजन मिला हो तो उसको भी उसी स्थान में प्रयत्न से उच्चारण करना उचित है। (ऋ० भा० पठन०)

३-बालशिक्षा

तीन उत्तम शिक्षक

वस्तुतः जब तीन उत्तम शिक्षक अर्थात् एक माता, दूसरा पिता और तीसरा आचार्य होवे तभी मनुष्य ज्ञानवान् होता है। वह कुल धन्य ! वह सन्तान बड़ा भाग्यवान् ! जिसके माता और पिता धार्मिक विद्वान् हों। जितना माता से सन्तानों को उपदेश और उपकार पहुँचता है उतना किसी से नहीं, जैसे माता सन्तानों पर प्रेम और उनका हित करना चाहती है उतना अन्य कोई नहीं करता, इसलिए धन्य वह माता है कि जो गर्भाधान से लेकर जब तक पूरी विद्या न हो तब तक सुशीलता का उपदेश करे। (स० प्र० स० २)

देवनागरी व अन्य देशीय भाषाओं का ज्ञान करावें

जब पाँच-पाँच वर्ष के लड़का-लड़की हों तो देवनागरी अक्षरों का अभ्यास करावें, अन्य देशीय भाषाओं के अक्षरों का भी। उसके पश्चात् जिनसे अच्छी शिक्षा, विद्या, धर्म, परमेश्वर, माता, पिता, आचार्य, विद्वान्, अतिथि, राजा, प्रजा, कुटुम्ब, बन्धु, भगिनी, भृत्य आदि से कैसे-कैसे वर्त्तना इन बातों के विषय में मन्त्र, श्लोक, सूत्र, पद्य भी अर्थ सहित कंठस्थ करावें। (स० प्र० स० २)

बाल्यकाल ही विद्याप्राप्ति व ब्रह्मचर्य का अमूल्य समय

माता-पिता अपनी सन्तानों को बतावें कि 'जो तुम लोग सुशिक्षा और विद्या के ग्रहण, वीर्य की रक्षा करने में इस समय चूकोगे तो पुनः इस जन्म में तुमको यह अमूल्य समय प्राप्त नहीं हो सकेगा। जब तक

हम लोग गृहकार्यों के करने वाले जीते हैं तभी तक तुमको विद्या

ग्रहण और शरीर का बल बढ़ाना चाहिए' इसी प्रकार की अन्य-अन्य शिक्षा भी माता-पिता करें। (स० प्र० स० २)

पढ़ाने में लाड़न नहीं करना योग्य है !

उन्हीं के सन्तान विद्वान्, सभ्य और सुशिक्षित होते हैं, जो पढ़ाने में सन्तानों का लाड़न कभी नहीं करते, किन्तु ताड़ना ही करते हैं। परन्तु माता-पिता तथा अध्यापक लोग ईर्ष्या, द्वेष से ताड़न न करें, किन्तु ऊपर से भय प्रदान और भीतर से कृपा दृष्टि रखें।

(स० प्र० स० २)

संतान व शिष्य सत्योपदेश व धर्मयुक्त कर्म ही ग्रहण करें

माता, पिता, आचार्य अपने सन्तान और शिष्यों को सदा सत्य उपदेश करें और यह भी कहें कि जो-जो हमारे धर्मयुक्त कर्म हैं उन-उनका ग्रहण करो और जो-जो दुष्ट कर्म हों उनका त्याग कर दिया करो। (स० प्र० स० २)

माता का कर्त्तव्य

बालकों को माता सदा उत्तम शिक्षा करें, जिससे सन्तान सभ्य हों और किसी अंग से कुचेष्टा न करने पावें। जब बोलने लगें तब उसकी माता बालक की जिह्वा जिस प्रकार कोमल होकर स्पष्ट उच्चारण कर सके वैसा उपाय करे कि जो जिस वर्ण का स्थान प्रयत्न अर्थात् जैसे "प" इसका ओष्ठ स्थान और स्पृष्ट प्रयत्न दोनों ओष्ठों को मिलाकर बोलना, ह्रस्व, दीर्घ, प्लुत अक्षरों को ठीक-ठीक बोल सकना। मधुर, गम्भीर, सुन्दर, स्वर, अक्षर, मात्रा, पद वाक्य, संहिता, अवसान भिन्न-भिन्न श्रवण होवे। जब वह कुछ-

कुछ बोलने और समझने लगे तब सुन्दर वाणी और बड़े, छोटे,

मान्य, पिता, माता, राजा, विद्वान् आदि से भाषण, उनसे वर्त्तमान और उनके पास बैठने आदि की शिक्षा करें, जिससे कहीं उनका अयोग्य व्यवहार न होके सर्वत्र प्रतिष्ठा हुआ करे। जैसे सन्तान जितेन्द्रिय, विद्याप्रिय और सत्संग में रुचि करे वैसे प्रयत्न करते रहें। व्यर्थ क्रीड़ा, रोदन, हास्य, लड़ाई, हर्ष, शोक, किसी पदार्थ में लोलुपता, इर्ष्या, द्वेषादि न करें। उपस्थेन्द्रिय के स्पर्श और मर्दन से वीर्य की क्षीणता, नपुंसकता होती और हस्त में दुर्गन्ध भी होता है, इससे उसका स्पर्श न करें। (स० प्र० द्वि० स०)

पढ़ने-पढ़ाने वालों के लिए नियम

यथार्थ आचरण से पढ़ें और पढ़ावें, सत्याचार से सत्य विद्याओं को पढ़ें वा पढ़ावें, तपस्वी अर्थात् धर्मानुष्ठान करते हुए वेदादि शास्त्रों को पढ़ें और पढ़ावें, वाह्य इन्द्रियों को बुरे आचरणों से रोक के पढ़ें और पढ़ाते जायें, मन की वृत्ति को सब प्रकार के दोषों से हटाके पढ़ते पढ़ाते जायें, आहवनीयादि अग्नि और विद्युत् आदि को जानके पढ़ते पढ़ाते जायें और अग्निहोत्र करते हुए पठन और पाठन करें करावे। अतिथियों की सेवा करते हुए पढ़ें और पढ़ावें, मनुष्यसंबंधी व्यवहारों को यथायोग्य [करते हुए] पढ़ते पढ़ाते रहें, सन्तान और राज्य का पालन करते हुये पढ़ते पढ़ाते जायें, वीर्य की रक्षा और वृद्धि करते हुवे पढ़ते पढ़ाते जायें। अपने सन्तान और शिष्य का पालन करते हुये पढ़ते पढ़ाते जायें। (स० प्र० तृ० ३ स०)

तीन वर्ष के पूर्व वैराग्य

जो बुद्धिमान पुरुषार्थी, निष्कपटी, विद्यावृद्धि के चाहने वाले नित्य पढ़ें पढ़के पढ़ावें तो डेढ़ वर्ष में अष्टाध्यायी और डेढ़ वर्ष में महाभाष्य पढ़ के तीन वर्ष में पूर्ण वयाकरण होकर वैदिक और लौकिक

शब्दों का व्याकरण से बोध कर पुनः अन्य शास्त्रों को शीघ्र सहज में पढ़ पढ़ा सकते हैं। किन्तु जैसा बड़ा परिश्रम व्याकरण में होता है वैसा श्रम अन्य शास्त्रों में करना नहीं पड़ता और जितनी बोध इनके पढ़ने से तीन वर्षों में होता है उतना बोध कुग्रन्थ अर्थात् सारस्वत, चन्द्रिका, कौमुदी, मनोरमादि के पढ़ने से पचास वर्षों में भी नहीं हो सकता। (स० प्र० तृ०३ स०)

आर्ष ग्रन्थों का गठन

महर्षि लोगों का आशय, जहाँ तक हो सके वहाँ तक सुगम और जिसके ग्रहण में समय थोड़ा लगे इस प्रकार का होता है और क्षुद्राशय लोगों की मनसा ऐसी होती है कि जहाँ तक बने वहाँ तक कठिन रचना करनी जिसको बड़े परिश्रम से पढ़के अल्प लाभ उठा सकें, जैसे पहाड़ का खोदना, कोडी का लाभ होना। और अन्य ग्रन्थों का पढ़ना ऐसा है कि जैसा एक गोता लगाना, बहुमूल्य मोतियों का पाना। (स० प्र० तृ०३ स०)

सभ्यता प्राप्त करने वाले ग्रन्थ

मनुस्मृति, वाल्मीकीय रामायण और महाभारत के उद्योगपर्वान्तर्गत विदुरनीति आदि अच्छे-अच्छे प्रकरण जिनसे दुष्ट व्यसन दूर हों और उत्तमता, सभ्यता प्राप्त हो वैसे को काव्यरीति से अर्थात् पदच्छेद पदार्थोक्ति, अन्वय, विशेष्यविशेषण और भावार्थ को अध्यापक लोग जनावें और विद्यार्थी लोग जानते जायें। इनको वर्ष के भीतर पढ़ले। (स० प्र० तृ०३ स०)

वेदों का पढ़ना

तदनन्तर पूर्वमीमांसा, वैशेषिक, न्याय, योग, सांख्य और वेदान्त

अर्थात् जहाँ तक बन सके वहां तक ऋषिकृत व्याख्यासहित अथवा उत्तम विद्वानों की सरल व्याख्यायुक्त छः शास्त्रों को पढ़ें-पढ़ावें। परन्तु वेदान्त सूत्रों के पढ़ने के पूर्व ईश, केन, कठ, प्रश्न, मुण्डक, माण्डूक्य, ऐतेरेय, तैत्तिरीय, छाँदोग्य और बृहदारण्यक इन दश उपनिषदों को पढ़के छः शास्त्रों के भाष्य वृत्ति संहित सूत्रों को दो बर्ष के भीतर पढ़ावें और पढ़ लेवें पश्चात् छः वर्षों के भीतर चारों ब्राह्मण, अर्थात् ऐतरेय, शतपथ साम और गोपथ ब्राह्मणों के सहित चारों वेदों के स्वर, शब्द, अर्थ सम्बन्ध तथा क्रिया सहित पढ़ना योग्य है। (स० प्र० तृ०३ स०)

४-वर्णाश्रम व्यवस्था

वर्ण-व्यवस्था गुण कर्म स्वभाव के अनुसार

वर्णव्यवस्था (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र) गुण, कर्म, स्वभाव के अनुसार होनी चाहिए। पहले भी छान्दोण्यउपनिषद् में जावाल ऋषि अज्ञात कुल, महाभारत में विश्वामित्र क्षत्रिय वर्ण और मातंग ऋषि चांडाल कुल से ब्राह्मण हो गये थे, अब भी जो उत्तम विद्या स्वभाव वाला है वह ब्राह्मण के योग्य और मूर्ख शूद्र के योग्य होता है और वैसे ही आगे भी होगा। (स० प्र० स० ४)

गुण कर्म स्वभाव के अनुसार उत्तम व नीच वर्ण में गिनना

रजवीर्य के योग से ब्राह्मण शरीर नहीं होता। जो ब्राह्मणादि उत्तम कर्म करते हैं वे ही ब्राह्मणादि और जो नीच भी उत्तम वर्ण के गुण कर्म स्वभाव वाला होवे तो उसको भी उत्तम वर्ण में और जो उत्तम वर्णस्थ होके नीच काम करे तो उसको नीच वर्ण में अवश्य गिनना चाहिए। (स० प्र० स० ४)

गुण कर्म स्वभावानुसार व्यवस्था से सब वर्णों में शुद्धता, योग्यता

जैसे पुरुष जिस-जिस वर्ण के योग्य होता है वैसे ही स्त्रियों की भी व्यवस्था समझनी चाहिए। इस प्रकार होने से सब वर्ण अपने-अपने गुण कर्म स्वभाव युक्त होकर शुद्धता के साथ रहते हैं अर्थात् ब्राह्मण कुल में कोई क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र सदृश न रहे और क्षत्रिय वैश्य तथा शूद्र वर्ण भी शुद्ध रहते हैं। इससे किसी वर्ण की निन्दा व अयोग्यता भी न होगी। (स० प्र० स० ४)

वर्णव्यवस्था से सब मनुष्य उन्नतिशील होते हैं

जिस-जिस पुरुष में जिस-जिस वर्ण के गुण कर्म हों उस-उस वर्ण का अधिकार देना, ऐसी व्यवस्था रखने से सब मनुष्य उन्नतिशील होते हैं। क्योंकि उत्तम वर्णों को निम्न वर्ण में जाने से वर्णों को भय होगा कि हमारे सन्तान मूर्खत्वादि दोष युक्त होंगे तो शूद्र हो जायेंगे और सन्तान भी डरते रहेंगे कि जो हम उक्त चाल-चलन और विद्यायुक्त न होंगे तो शूद्र होना पड़ेगा और नीच वर्णों को उत्तम वर्णस्थ होन के लिए उत्साह बढ़ेगा।

(स० प्र० स०)

वर्णव्यवस्था का सारांश

विद्या और धर्म के प्रचार का अधिकार ब्राह्मण को देना, क्योंकि वे पूर्ण विद्यावान और धार्मिक होने से उस काम को यथायोग्य कर सकते हैं।

क्षत्रियों को राज्य के अधिकार देने से कभी राज्य की हानि व विघ्न नहीं होता।

पशुपालनादि का अधिकार वैश्यों को ही होना योग्य है क्योंकि वे इस काम को अच्छे प्रकार कर सकते हैं।

शूद्र को सेवा का अधिकार इसलिए है कि वह विद्यारहित मूर्ख होने से विज्ञानसम्बन्धी काम कुछ भी नहीं कर सकता किन्तु शरीर के सब काम कर सकता है। इस प्रकार वर्णों को अपने-अपने अधिकार में प्रवृत्त करना राजा आदि सभ्य-जनों का काम है।

(स० प्र० स० ४)

चारों वर्णों के धर्म

१—ब्राह्मण के पढ़ना पढ़ाना, यज्ञ करना कराना, दान देना, लेना, ये छः कर्म हैं।

२—क्षत्रिय-न्याय से प्रजा की रक्षा अर्थात् पक्षपात छोड़ के श्रेष्ठों का सत्कार और दुष्टों का तिरस्कार करना, सब प्रकार से सबका पालन, विद्या, धर्म की प्रवृत्ति और सुपात्रों की सेवा में धनादि पदार्थ का व्यय करना, अग्निहोत्रादि यज्ञ करना व कराना, वेदादि शास्त्रों का पढ़ना व पढ़वाना और विषयों में न फंसकर जितेन्द्रिय रहकर सदा शरीर और आत्मा से बलवान रहना।

३—गाय आदि पशुओं का पालन, वर्द्धन करना, विद्या धर्म की वृद्धि करने कराने के लिए धनादि का व्यय करना, अग्निहोत्रादि यज्ञों का करना, वेदादि शास्त्रों का पढ़ना, सब प्रकार के व्यापार करना, एक सैकड़े में चार, छः, आठ, बारह, सोलह व बीस आने से अधिक ब्याज और मूल से दूना अर्थात् एक रुपया दिया तो सौ वर्ष में भी दो रुपये से अधिक न लेना और न देना, खेती करना, ये वैश्य के गुण कर्म हैं।

४—शूद्र को योग्य है कि निन्दा, ईर्ष्या, अभिमान आदि दोषों को छोड़के ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यों की सेवा यथावत् करना और उसी से अपना जीवन निर्वाह करना, यही एक शूद्र का गुण कर्म है।

(स० प्र० स० ४)

भय से और निम्न वर्णों को उत्तम वर्णस्थ होने के लिए उत्साह से सदा परिश्रम करते रहना होगा। इस प्रकार वर्णों को अपने-अपने अधिकार में प्रवृत्त करना राजा आदि सभ्यजनों का काम है।

(स० प्र० स० ४)

अधर्मात्मा का विनाश अवश्यंभावी

जब अधर्मात्मा मनुष्य धर्म की मर्यादा छोड़, कपट, पाखंड, विश्वासघात आदि कर्मों से पराये पदार्थों को लेकर प्रथम बढ़ता है, पश्चात् धनादि ऐश्वर्य से प्रतिष्ठा को प्राप्त होता है, अन्याय से शत्रुओं को भी जीतता है पश्चात् शीघ्र समूल नष्ट हो जाता है।

(स० प्र० स० ४)

ब्राह्मण वर्णों का काम

अध्यापक लोग ऐसा यत्न किया करें, जिससे विद्यार्थी लोग सत्यवादी, सत्यमानी, सत्यकारी, सभ्यता, जितेन्द्रियता, सुशीलतादि शुभगुणयुक्त शरीर और आत्मा का पूर्ण बल बढ़ा के समग्र वेदादि शास्त्रों में विद्वान् हों, सदा उनकी कुचेष्टा छुड़ाने में और विद्या पढ़ाने में चेष्टा किया करें। और विद्यार्थी लोग सदा जितेन्द्रिय, शांति, पढ़ानेहारों में प्रेमी, विचारशील, परिश्रमी होकर ऐसा पुरुषार्थ करें जिससे पूर्ण विद्या, पूर्ण आयु, परिपूर्ण धर्म और पुरुषार्थ करना आ जाय, इत्यादि ब्राह्मण वर्णों के काम हैं।

(स० प्र० स० ४)

५-संन्यास धर्म

संन्यासी का विशेष धर्म

दश लक्षण युक्त (घृति, क्षमा, दम, अस्तेय, शौच, इन्द्रिय निग्रह, धी, विद्या, सत्य, अक्रोध) पक्षपात रहित न्यायाचरण, धर्म में सदा आप चलना और दूसरों को समझाकर चलाना संन्यासी का विशेष धर्म है। संन्यासियों का मुख्य कर्म यही है कि सब गृहस्थादि आश्रमों को सब प्रकार के व्यवहारों का सत्य निश्चय करा, अधर्म व्यवहारों से छुड़ा, सब संशयों का छेदन कर, सत्य धर्म युक्त व्यवहारों में प्रवृत्त कराया करें। (स० प्र० स० ५)

संन्यास ग्रहण की आवश्यकता

जैसे शरीर में शिर की आवश्यकता है, वैसे ही आश्रमों में संन्यासाश्रम की आवश्यकता है क्योंकि इसके बिना विद्या, धर्म कभी नहीं बढ़ सकता और दूसरे आश्रमों को विद्या ग्रहण, गृहकृत्य और तपश्चर्यादि का सम्बन्ध होने से अवकाश बहुत कम मिलता है। पक्षपात छोड़कर वर्त्तना दूसरे आश्रमों को दुष्कर है। जैसा संन्यासी सर्वतोमुक्त होकर जगत् का उपकार करता है वैसा अन्य आश्रमी नहीं कर सकता क्योंकि संन्यासी को सत्य विद्या से पदार्थों के विज्ञान की उन्नति का जितना अवकाश मिलता है उतना अन्य आश्रमी को नहीं मिल सकता। (स० प्र० स० ५)

संन्यासी नियन्ता होता है

सत्योपदेश सब आश्रमी करें और सुनें परन्तु जितना अवकाश

निष्पक्षपातता संन्यासी को होती है उतनी गृहस्थों को नहीं। जितना

भ्रमण का अवकाश संन्यासी को मिलता है अन्यों को नहीं। जब ब्राह्मण वेद-विरुद्ध आचरण कर तब उनका नियन्ता संन्यासी होता है। (स० प्र० स० ५)

उत्तम संन्यासी की व्यवस्था श्रेष्ठ धर्म है

यदि एक अकेला वेदों का जाननेहारा द्विजों में उत्तम संन्यासी जिस धर्म (कर्त्तव्य कर्म) की व्यवस्था करे वही श्रेष्ठ धर्म है, क्योंकि अज्ञानियों के सहस्रों लाखों करोड़ों मिल के जो कुछ व्यवस्था करें उसको कभी न मानना चाहिए। जो अविद्या युक्त मूर्खों के कहे कर्म के अनुसार चलते हैं उनके पीछे सैकड़ों प्रकार के पाप लग जाते हैं। (स० प्र० स० ६)

कल्पित संन्यासी

जब एषणा ही नहीं छूटी तो संन्यास क्योंकर हो सकता है ? पक्षपात रहित सत्योपदेश से जगत् का कल्याण करने में अहर्निश प्रवृत्त रहना संन्यासियों का मुख्य काम है। जब अपने अधिकार कर्मों को नहीं करते पुनः संन्यासादि नाम धरना व्यर्थ है। नहीं तो, जैसे गृहस्थ व्यवहार और स्वार्थ में परिश्रम करते हैं, उनसे अधिक परिश्रम परोपकार करने में संन्यासी भी तत्पर रहे, तभी सब आश्रम उन्नति पर रहें। जब लों वर्तमान और भविष्यत् में संन्यासी उन्नतिशील नहीं होते, तब लों आर्य्यावर्त और अन्य देशस्थ मनुष्यों की वृद्धि नहीं होती। (स० प्र० स० ११)

६–ईश्वर का स्वरूप—उसकी उपासना

न्याय और दया का भेद

जिसने जैसा जितना बुरा कर्म किया हो उसको उतना वैसा ही

दण्ड देना, यह न्याय है। दण्ड देने का यह प्रयोजन है कि मनुष्य

अपराध करने से बद्ध होकर दुःखों को प्राप्त न हो (अर्थात् बुरे कर्म करने में प्रवृत्त न हो)। दया का भी यही प्रयोजन है कि पराये दुःखों को छुड़ाना। यदि अपराधी को दण्ड न दिया जाए तो दया का नाश हो जाये क्योंकि एक अपराधी को छोड़ देने से सहस्रों धर्मात्मा पुरुषों को दुःख देना होगा और उस अपराधी की अपराध करने की प्रवृत्ति नष्ट न होकर उसे भी दुःख भोगना होगा। अतः उस अपराधी को दण्ड देकर ही उसे पाप से बचाना उस पर दया प्रकाशित करना है।
(स० प्र० स० ७)

स्तुति, प्रार्थना, उपासना

ईश्वर की स्तुति, प्रार्थना, उपासना से मनुष्य के पाप नहीं छूटते। इनका फल कुछ अन्य ही है—स्तुति से ईश्वर में प्रीति, उसके गुण, कर्म, स्वभाव से अपने गुण, कर्म, स्वभाव का सुधारना, प्रार्थना से निरभिमानता, उत्साह और सहाय का मिलना, उपासना से परब्रह्म से मेल और उसका साक्षात्कार होना। जो केवल भांड के समान परमेश्वर के गुण कीर्तन करता जाता और अपने चरित्र नहीं सुधारता उसका स्तुति करना व्यर्थ है। जिस-जिस दोष वा दुर्गुण को छोड़ने व सद्गुण को प्राप्त करने की परमात्मा से प्रार्थना करे, उस उसके लिए अपने से जितना हो सके प्रयत्न करे अर्थात् अपने पुरुषार्थ के उपरान्त प्रार्थना करनी योग्य है क्योंकि जो परमेश्वर की पुरुषार्थ करने की आज्ञा है उसको जो कोई तोड़ेगा वह सुख कभी न पावेगा।
(स० प्र० स० ७)

ईश्वर अवतार नहीं लेता

जो ईश्वर अवतार शरीर धारण किये विना जगत् की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय करता है उसके सामने कंस, रावणादि राक्षस

एक कीड़ी के समान भी नहीं। वह सर्वशक्तिमान, सर्वव्यापक होने से उन कंस, रावणादि राक्षसों के शरीर में भी परिपूर्ण हो रहा है, जब चाहे उसी समय मर्मच्छेदन कर नाश कर सकता है।

भक्तजनों के उद्धार करने के लिए भी वह अवतार नहीं लेता क्योंकि जो भक्तजन ईश्वर की आज्ञानुकूल चलते हैं उनके उद्धार करने का पूरा सामर्थ्य ईश्वर में है। पृथिवी, सूर्यादि जगत् की उत्पत्ति, धारण और प्रलय जो ईश्वर के बड़े कर्म हैं उनके सामने रावणादि का वध एक साधारण एवं नगण्य कर्म है।

परमात्मा के अनन्त सर्वव्यापक होने से उसका आना जाना कभी सिद्ध नहीं हो सकता। जाना वा आना वहां हो सकता है जहां न हो। क्या परमेश्वर वह गर्भ में व्यापक नहीं था जो कहीं से आया? और बाहर नहीं था जो भीतर से निकला? इसलिए परमेश्वर का आना-जाना, जन्म-मरण कभी सिद्ध नहीं हो सकता। राग, द्वेष, क्षुधा, तृषा, भय, शोक, दुःख, सुख, जन्म, मरण आदि गुण मनुष्य के हैं, ईश्वर के नहीं।

(स० प्र० स० ७)

ईश्वर पाप क्षमा नहीं करता

ईश्वर पाप क्षमा नहीं करता। क्योंकि जो पाप क्षमा करे तो उसका न्याय नष्ट हो जाये और सब मनुष्य महापापी हो जायें। क्योंकि क्षमा की बात सुन ही के उनको पाप करने में निर्भयता और उत्साह हो जाये। और जो अपराध नहीं करते वे भी अपराध करने से न डर कर पाप करने में प्रवृत्त हो जायेंगे, इसलिए सब कर्मों का फल यथावत् देना ही ईश्वर का काम है, क्षमा करना नहीं।

(स० प्र० स० ७)

परमेश्वर सगुण व निर्गुण है

परमेश्वर सगुण व निर्गुण दोनों प्रकार है। जो गुणों से सहित

वह सगुण और जो गुणों से रहित वह निर्गुण कहाता है। अपने-अपने स्वाभाविक गुणों से सहित और दूसरे विरोधी के गुणों से रहित होने से सब पदार्थ सगुण और निर्गुण हैं, कोई भी ऐसा पदार्थ नहीं है जिसमें केवल निर्गुणता व केवल सगुणता हो। किन्तु एक ही में सगुणता और निर्गुणता सदा रहती है। वैसे ही परमेश्वर अपने अनन्त ज्ञान, बलादि गुणों से सहित होने से सगुण और रूपादि जड़ के तथा द्वेषादि जीव के गुणों से पृथक् होने से निर्गुण कहाता है।

(स० प्र० स० ७)

सृष्टि के आदि में ईश्वर वेदविद्या देता है

मनुष्य लोग क्रमशः ज्ञान बढ़ाते जाकर पश्चात् पुस्तक भी बना लें—सो ऐसा कभी नहीं हो सकता है (१) जैसे जंगली मनुष्य सृष्टि को देखकर भी विद्वान् नहीं होते और जब उनको कोई शिक्षक मिल जाय तो विद्वान् हो जाते हैं और अब भी किसी से पढ़े बिना कोई भी विद्वान् नहीं होता। इस प्रकार जो परमात्मा उन आदि सृष्टि के ऋषियों को वेदविद्या न पढ़ाता और वे अन्य को न पढ़ाते तो सब लोग अविद्वान् ही रह जाते। (२) जैसे किसी के बालक को जन्म से एकान्त देश, अविद्वानों वा पशुओं के संग में रख दें तो वह जैसा संग है वैसा ही हो जायगा। (३) जब तक आर्यावर्त्त देश से शिक्षा नहीं गई थी तब तक मिश्र, यूनान और यूरोप देशआदिस्थ मनुष्यों में कुछ भी विद्या नहीं हुई थी। और यूरोप के कुलुम्बस आदि पुरुष अमेरिका में जब तक नहीं गये थे तब तक वे भी सहस्रों लाखों, क्रोड़ों वर्षों से मूर्ख अर्थात् विद्याहीन थे। पुनः सुशिक्षा के पाने से विद्वान् हो गये हैं वैसे ही परमात्मा से सृष्टि की आदि में विद्या शिक्षा की प्राप्ति से उत्तरोत्तर काल में विद्वान् होते आये। जो परमात्मा वेदों का प्रकाश न करे तो कोई कुछ भी न बना सके।

(स० प्र० स० ७)

जगत् के बनाने में ईश्वर का प्रयोजन

ईश्वर में जगत् की रचना का विज्ञान, बल और क्रिया है जिसका प्रयोजन जगत् की उत्पत्ति करना है। परमात्मा के न्याय, धारण, दया आदि गुण भी जगत् के बनाने में ही सार्थक होते हैं। उसका अनन्त सामर्थ्य जगत् की उत्पत्ति, स्थिति, प्रलय और व्यवस्था करने ही से सफल है। जैसे नेत्र का स्वाभाविक गुण देखना है वैसे परमेश्वर का स्वाभाविक गुण जगत् की उत्पत्ति करके सब जीवों को असंख्य पदार्थ देकर परोपकार करना है।

(स० प्र० स० ८)

ईश्वर सर्वशक्तिमान है

सर्वशक्तिमान का यह अर्थ नहीं है कि जो असम्भव बात को भी कर सके। जो कोई असम्भव बात अर्थात् जैसे कारण के विना कार्य को कर सकता है तो विना कारण दूसरे ईश्वर की उत्पत्ति कर और स्वयं मृत्यु को प्राप्त, जड़, दुःखी, अन्यायकारी, अपवित्र और कुकर्मी आदि हो सकता है वा नहीं ? जैसे आप जड़ नहीं हो सकता वैसे जड़ को चेतन भी नहीं कर सकता। और ईश्वर के नियम सत्य और पूरे हैं इसलिए परिवर्तन नहीं कर सकता। इसलिए सर्वशक्तिमान् का अर्थ इतना ही है कि परमात्मा बिना किसी के सहाय के अपने सब कार्य पूर्ण कर सकता है। (स० प्र० स० ८)

ईश्वर साकार नहीं

जो ईश्वर साकार होवे तो (१) वह परिमित शक्ति युक्त, देश-काल, वस्तुओं में परिच्छिन्न, क्षुधा, तृषा, छेदन, भेदन, शीतोष्ण, ज्वर, पीड़ादि सहित होवे (२) उसमें जीव के विना ईश्वर के गुण

कभी नहीं घट सकते (३) जैसे तुम और हम साकार अर्थात् शरीर-धारी हैं, इससे त्रसरेणु, अणु, परमाणु और प्रकृति को अपने वश में नहीं ला सकते और न उन सूक्ष्म पदार्थों को पकड़कर स्थूल बना सकते हैं, वैसे ही स्थूल देहधारी परमेश्वर भी उन सूक्ष्म पदार्थों से स्थूल जगत् नहीं बना सकता। (४) जो परमेश्वर भौतिक इन्द्रिय-गोलक हस्तपादादि अवयवों से रहित है, परन्तु उसकी अनन्त शक्ति बल पराक्रम है, उनसे सब काम करता है, जो जीव और प्रकृति से कभी नहीं हो सकते। (५) जब वह प्रकृति से सूक्ष्म और उसमें व्यापक है तभी वह उसको पकड़ कर जगदाकार कर देता है (६) और वह सर्वगत होने से सबका धारण और प्रलय भी कर सकता है।
(स० प्र० स० ८)

ईश्वर के काम में भूल-चूक नहीं

परमेश्वर के काम बिना भूल-चूक के होने से सदा एक से ही हुआ करते हैं। जो अल्पज्ञ है और जिसका ज्ञान वृद्धि क्षय को प्राप्त होता है उसी के काम में भूल-चूक होती है, ईश्वर के काम में नहीं।
(स० प्र० स० ८)

धन्य वे पुरुष हैं

जो मनुष्य विद्वान् सत्संगी होकर पूरा विचार नहीं करता वह सदा भ्रमजाल में पड़ा रहता है। धन्य वे पुरुष हैं कि सब विद्याओं सिद्धान्तों को जानते हैं और जानने के लिए परिश्रम करते है, जान कर औरों को निष्कपटता से जनाते हैं। (स० प्र० स० ८)

ईश्वर की अद्भुत सृष्टि

देखो! शरीर में किस प्रकार की ज्ञानपूर्वक सृष्टि रची है कि जिसका विद्वान् लोग देखकर आश्चर्य मानते हैं। इस शरीर के

अन्दर अद्भुत सृष्टि को बिना परमेश्वर के कौन कर सकता है ?

इसके सिवाय नाना प्रकार के रत्न, धातु से जड़ित भूमि, विविध प्रकार वट वृक्ष, वनस्पतियों व अनेकानेक पदार्थ, क्रोड़ों भूगोल, सूर्य चन्द्रादि लोकलोकान्तर, उनका निर्माण, धारण, भ्रामण, नियमन आदि परमेश्वर के बिना कोई भी नहीं कर सकता। जब कोई किसी पदार्थ को देखता है तो दो प्रकार का ज्ञान उत्पन्न होता है। एक जैसा वह पदार्थ है और दूसरा उसमें रचना देखकर बनाने वाले का ज्ञान है। अतः इस नाना प्रकार सृष्टि में विविध रचनाएँ रचना वाले परमेश्वर को सिद्ध करती हैं। (स० प्र० स० ८)

ईश्वर के गुण, कर्म, स्वभाव और कर्म अनादि अनन्त हैं

सृष्टि प्रवाह से अनादि है। जैसे परमेश्वर के गुण, कर्म, स्वभाव अनादि हैं वैसे ही उसके जगत् की उत्पत्ति, प्रलय करना भी अनादि है। जैसे कभी ईश्वर के गुण, कर्म, स्वभाव का आरम्भ और अन्त नहीं, इसी प्रकार उसके कर्तव्य कर्मों का भी आरम्भ और अन्त नहीं। (स० प्र० स० ८)

जीव को ईश्वर मानना भ्रांति है

देखो ! चाहे कितना ही कोई सिद्ध हो तो भी शरीर आदि की रचना को पूर्णता से नहीं जान सकता। जब सिद्ध जीव सुषुप्ति दशा में जाता है तब उसको कुछ भी भान नहीं रहता, जब जीव दुःख को प्राप्त होता है तब उसका ज्ञान भी न्यून हो जाता है, ऐसे परिच्छिन्न सामर्थ्य वाले एक देश में रहने वाले (जीव) को ईश्वर मानना भ्रांति है। (स० प्र० स० १२)

ईश्वर के काम बेडौल नहीं

ईश्वर की बनाई पृथिवी बेडौल मानना भ्रान्ति है। ईश्वर का

का[illegible] नहीं हो सकता, क्योंकि वह सर्वज्ञ है, उसके काम में न भूल न चूक कभी हो सकती है। (स० प्र० स० १३)

ईश्वर किसी स्थान विशेष में नहीं

यदि ईश्वर चौथे अथवा सातवें आसमान आदि किसी स्थान विशेष में रहता तो वह विभु और सर्वज्ञ नहीं हो सकता। जो विभु नहीं, तो जगत् की रचना, धारण, पालन और जीवों के कर्मों की व्यवस्था व प्रलय कभी नहीं कर सकता क्योंकि जिस पदार्थ का स्वरूप एकदेशी है उसके गुण, कर्म, स्वभाव भी एकदेशी होते हैं। जो ऐसा है तो वह ईश्वर नहीं हो सकता क्योंकि ईश्वर सर्वव्यापक, अनन्त गुण, कर्म,स्वभाव युक्त, सच्चिदानन्द स्वरूप, नित्य, शुद्ध, बुद्ध मुक्तस्वभाव, अनादि, अनन्तादि लक्षणयुक्त वेदों में कहा है, उसी को मानने में कल्याण है। (स० प्र० स० १३)

परमेश्वर मायावी नहीं

अरे भोले लोगों ! विवाह में जिसके गीत गाते हैं उसको सबसे बड़ा और दूसरों को छोटा व अथवा उसको सबका बाप नहीं बनाते ? कहो पोप जी। तुम भार और खुशामदी चारणों से भी बढ़कर हो अथवा नहीं ? कि जिसके पीछे लगी उसी को सबसे बड़ा बनाओ और जिससे विरोध करो उसको सबसे बीच ठहराओ। तुमको सत्य और धर्म से क्या प्रयोजन ? किन्तु तुमको तो अपने स्वार्थ ही से काम है। माया मनुष्य में हो सकती है जो कि छली कपटी हैं, उन्ही को मायावी कहते हैं। परमेश्वर में छल कपट आदि दोष न होने से उसको मायावी नहीं कह सकते ?

(स० प्र० प्र०)

७-राजधर्म

एक को राज्याधिकार नहीं देना

एक को स्वतन्त्र राज्य का अधिकार न देना चाहिए, किन्तु राजा जो सभापति तदाधीन सभा, सभाधीन राजा, राजा और सभा प्रजा के आधीन और प्रजा राजसभा के आधीन रहे।

यदि ऐसा न करेंगे तो—

जो प्रजा से स्वतन्त्र स्वाधीन राजवर्ग रहे तो राज्य में प्रवेश करके प्रजा का नाश किया करें, अकेला राजा स्वाधीन वा उन्मत्त होके प्रजा का नाशक होता है। अतः किसी एक को राज्य में स्वाधीन न करना चाहिए। स्वतन्त्र राजा प्रजा का नाश करता है अर्थात् किसी को अपने से अधिक न होने देता, श्रीमानों को लूट खसूट अन्याय से दण्ड (जुर्माना) लेके अपना प्रयोजन पूरा करता है। (स. प्र. स. ६)

दण्ड ही सच्चा राजा है

दण्ड ही प्रजा का शासनकर्त्ता सब प्रकार का रक्षक, सोते हुए प्रजास्थ मनुष्यों में जागता है, जो दण्ड अच्छे प्रकार विचार से धारण किया जाए तो वह सब प्रजा को आनन्दित कर देता है, और जो विना विचारे चलाया जाए तो सब ओर से राजा का विनाश कर देता है। विना दण्ड के सब वर्ण दूषित और सब मर्यादा छिन्न-भिन्न हो जाए। जब दण्ड का चलाने हारा पक्षपात रहित विद्वान् होता है तो पाप का नाश होकर प्रजा मोह को न प्राप्त होकर आनन्दित होती है। (स. प्र. स. ६)

राजा

'राजा' उसी को कहते हैं जो शुभ गुण, कर्म, स्वभाव से प्रकाशमान, पक्षपात रहित न्यायधर्म का सेवी, प्रजाओं से पितृवत वर्त्तें और उनको पुत्रवत् मान के उन्नति और सुख वढ़ाने में सदा यत्न किया करे।

(स्व० म० म०)

दानाभक्ष और दानाध्यक्ष

जो दाता के दान का भक्षण करके अपना स्वार्थ सिद्ध करता जाय वह दानाभक्ष और जो दाता के दान को सुपात्र विद्वानों को देकर उनसे विद्या और धर्म की उन्नति करता है वह दानाध्यक्ष कहाता है।

राजा कौन ?

जो विद्या, न्याय, जितेन्द्रियता, शौर्य, आदि गुणों से युक्त होकर अपने पुत्र के समान प्रजा के पालन में श्रेष्ठों की यथायोग्य रक्षा और दुष्टों को दण्ड देकर धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष,की प्राप्ति से युक्त होकर, अपनी प्रजा को बरावर, आनन्दित रखता और सबको सुख से युक्त करता है, वह राजा कहाता है।

(व्य० भा०)

प्रजा कौन ?

जैसे पुत्रादि तन, मन, धन से अपने माता पितादि की सेवा करके उनको सर्वदा प्रसन्न रखते हैं। वैसे प्रजा अनेक प्रकार के धर्मयुक्त व्यवहारों से पदार्थों को सिद्ध करके राजसभा को कर देकर उनको प्रसन्न रक्खे वह 'प्रजा' कहाती है और जो अपनी हित और प्रजा का अहित करना चाहे वह न राजा और जो अपना हित और

राजा का अहित चाहे वह प्रजा भी नहीं है। किन्तु उनको एक दूसरे

का शत्रु डाकू चोर समझना चाहिए, क्योंकि दोनों धार्मिक होके एक दूसरे का हित करने में नित्य प्रवर्त्तमान हो तभी उनकी राजा और प्रजा संज्ञा होती है। (व्य० मा०)

सुखी देश कौन सा ?

जिस राज्य के मनुष्य लोग अच्छी प्रकार ईश्वर को जानते हैं वही देश सुखी होता है। इससे राजा और प्रजा परस्पर सुख के लिए सद्‌गुणों के उपदेशक पुरुष की सदा सेवा करें और विद्या तथा बल को बढ़ावें। (ऋ० भा० भाष्य०)

एक को राजा क्यों न मानो

जब एक मनुष्य राजा होता है, वहाँ प्रजा ठगी जाती है तथा प्रजा का नाम-गान और राज्य का नाम पक्ष है। जहाँ तक मनुष्य राजा होता है वहाँ वह अपने लोभ से प्रजा के पदार्थों की हानि ही करता चला जाता है। इसलिए राजा को प्रजा का धातुक अर्थात् हनन करने वाला भी कहते हैं। इस कारण से एक को राजा कभी नहीं मानना चाहिए, किन्तु धार्मिक विद्वानों की सभा के आधीन ही राज्य प्रवन्ध होना चाहिए। (ऋ० भा० भाष्य०)

राजा और प्रजा की मर्यादा

दोनों अपने-अपने काम में स्वतन्त्र और मिले हुए प्रीतियुक्त काम में परतन्त्र रहे। प्रजा की साधारण सम्पत्ति के विरुद्ध राजा वा राजपुरुष न हो। राजा की आज्ञा के विरुद्ध राजपुरुष व प्रजा न चले। (स. प्र. स. ६)

राज्य बहुत दिन तक नहीं चलता

इस परमात्मा की सृष्टि में अभिमानी, अन्यायकारी, अविद्वान् लोगों का राज्य बहुत दिन नहीं चलता। और यह संसार की स्वाभाविक प्रवृत्ति है कि जब बहुत सा धन असंख्य प्रयोजन से अधिक होता है तब आलस्य, पुरुषार्थ रहितता ईर्ष्या, द्वेष, विषयासक्ति और प्रमाद बढ़ता है। इससे देश में विद्या सुशिक्षा नष्ट होकर दुर्गुण और दुष्ट व्यसन बढ़ जाते हैं, जैसे कि मद्यमांससेवन, बाल्यावस्था में विवाह और स्वेच्छाचारादि दोष बढ़ जाते हैं।

(स. प्र. स. ११)

न्याय मन्दिर की पवित्रता

जिस सभा में अधर्म (अन्याय) से घायल होकर धर्म उपस्थित होता है, जो उसका शल्य अर्थात् तीरवत् धर्म के कलंक को निकालना और अधर्म का छेदन नहीं करते अर्थात् धर्मी का मान व अधर्मी को दण्ड नहीं मिलता, उस सभा में जितने सभासद हैं वे सब घायल के समान समझे जाते हैं। जिस सभा में निन्दा के योग्य की निन्दा, स्तुति के योग्य की स्तुति, दण्ड के योग्य को दण्ड और मान्य के योग्य का मान्य होता है वहाँ राजा (न्यायाधीश) और सब सभासद पाप से रहित और पवित्र हो जाते हैं। (स. प्र. स. ६)

यथायोग्य दण्डदान

जब राजा (न्यायाधीश) न्यायासन पर बैठ न्याय करे तब किसी का पक्षपात न करे किन्तु यथोचित दण्ड देवे। राजपुरुषों को प्रजापुरुषों से अधिक दण्ड होवे अन्यथा राजपुरुषों का नाश कर दें। इस लिए राजा से लेकर छोटे से छोटे भृत्य पर्यन्त राजपुरुषों को अप-

राध में प्रजापुरुषों से अधिक दण्ड होना चाहिए। जिसका जितना ज्ञान और जितनी प्रतिष्ठा अधिक हो उसको अपराध में उतना ही अधिक दण्ड होना चाहिए। (स. प्र. स. ६)

राजा भी दण्डनीय है

यदि राजा को ही दण्ड न दिया जाए और वह ग्रहण न करे तो दूसरे मनुष्य दण्ड को क्यों कर मानेंगे ? और जब सब प्रजाजन, राज्याधिकारी, और सभा धार्मिकता, से दण्ड देना चाहें तो अकेला राजा क्या कर सकता है। यदि ऐसी व्यवस्था न हो तो राजा, प्रधान और सब समर्थ पुरुषार्थ अन्याय में डूब, सब प्रजा का नाशकर आप भी नष्ट हो जाएं। (स. प्र. स. ६)

यथा राजा तथा प्रजा

जैसा राजा होता है वैसी उसकी प्रजा होती है। इसलिए राजा और राजपुरुषों को अति उचित है कि कभी दुष्टाचार न करें, किन्तु सब दिन धर्म न्याय से वर्त्तकर सबके सुधार का दृष्टात बनें। इसलिए सर्वदा शरीर और आत्मा के बल को बढ़ाते रहना चाहिए। जैसा बल और बुद्धि का नाशक व्यवहार व्यभिचार और अति विषया-सक्ति है वैसा और कोई नहीं है। विशेषतः क्षत्रियों को दृढ़ांग और बलयुक्त होना चाहिए। (स. प्र. स. ६)

राज्यों के नष्ट होने के कारण

स्वायंभुव राजा से लेकर पांडवपर्यन्त आर्यों का चक्रवर्ती राज्य रहा। तत्पश्चात् आपस के विरोध से लड़कर नष्ट हो गये। पर-मात्मा की सृष्टि में अभिमानी, अन्यायकारी, अविद्वान् लोगों का राज्य बहुत दिनों तक नहीं चलता। यह संसार की स्वाभाविक

प्रवृत्ति है कि जब बहुत सा धन असंख्य प्रयोजन से अधिक होता है तब आलस्य, पुरुषार्थरहितता, ईर्ष्या, द्वेष, विषयासक्ति, और प्रमाद बढ़ता है। इससे देश में विद्या सुशिक्षा नष्ट होकर दुर्गुण और दुष्ट व्यसन बढ़ जाते हैं। अब जब युद्ध विभाग मेंयुद्ध विद्या कौशल और सेना इतनी बढ़े कि जिसका सामना करने वाला भूगोल में कोई न हो तब उन लोगों में पक्षपात अभिमान बढ़कर अन्याय बढ़ जाता है। जब ये दोष हो जाते हैं तब आपस में विरोध होकर अथवा उनसे अधिक दूसरे छोटे कुलों में से कोई ऐसा समर्थ पुरुष खड़ा होता है कि उनका पराजय करने समर्थ हो जाता है।

(स. प्र. स. ११)

मंत्र से अस्त्र-शस्त्रों की सिद्धि

जिन बातों से अस्त्र-शस्त्रों को सिद्ध करते थे वे 'मन्त्र' अर्थात् विचार से सिद्ध करते और चलाते थे और जो मन्त्र अर्थात् शब्दमय होता है उससे कोई द्रव्य उत्पन्न नहीं होता। इसलिए मन्त्र नाम है विचार का। मन्त्र अर्थात् विचार से सब सृष्टि का प्रथम ज्ञान और पश्चात् क्रिया करने से अनेक प्रकार के पदार्थ और क्रियाकौशल उत्पन्न होते हैं। (स. प्र. स. ११)

सभाओं आदि में आचरण कैसा हो

जब सभा में जावें तब दृढ़ निश्चय कर लेवें कि मैं सत्य को जिताऊँ और असत्य को हराऊँगा। अभिमान न रक्खें अपने को बड़ा न मानें। अपनी बात का कोई खण्डन न करें, उस पर क्रुद्ध वा अप्रसन्न न हों। जो कोई कहे उस वचन को ध्यान देकर सुनके जो उसमें कुछ असत्य बात हो, उस अंश का खण्डन अवश्य करे और जो सत्य हो तो प्रसन्नतापूर्वक ग्रहण करे, बड़ाई छोटाई न

गिने, व्यर्थ बकवाद न करे, कभी मिथ्या का पक्ष न करे और सत्य को कदापि न छोड़े। ऐसी रीति से बैठे वा उठे कि जिससे किसी को बुरा विदित न हो।

(व्यवहार भानु)

यथा राजा तथा प्रजा

इस पर भी ध्यान रखना चाहिए कि "यथा राजा तथा प्रजा" जैसा राजा होता है, वैसी ही उसकी प्रजा होती है। इसलिए राजा और राजपुरुषों को अति उचित है कि कभी दुष्टाचार न करे किन्तु सब दीन-धर्म और न्याय से वर्त्तं कर सबके सुधार का द्रष्टान्त बने।

(स० प्र०)

राजदूत कैसा कर्म करें

दूत उससे कहते हैं जो फूट में मेल और मिले हुए दुष्टों को तोड़ फोड़ देवें दूत वह काम करें जिससे विदेशी शासनों में फूट पड़े।

(स० प्र०)

राजा और धर्म

न्याययुक्त दण्ड ही का नाम सजा और धर्म है जो उसका लोप करता है उससे नीच पुरुष दूसरा कौन होगा? (स० प्र० स०)

राज्य मंत्री को दण्ड

मन्त्री अर्थात् राजा के दीवान को आठ सौ गुणा उनसे न्यून को सात सौ गुणा और उससे भी न्यून को छः सौ गुणा। इसी प्रकार उत्तर-उत्तर अर्थात् जो कि एक छोटे से छोटा भृत्य अर्थात् चपरासी है, उसको आठ गुणे दण्ड से कम न होना चाहिए।

यदि प्रजा पुरुषों से राजपुरुषों को अधिक दण्ड न होवे तो राजपुरुषों का नाश कर देवे, जैसे सिंह अधिक और बकरी थोड़े दण्ड से ही वश में आ जाती है। (स० प्र०)

राज्य मन्त्री के कार्य

स्वराज्य स्वदेश में उत्पन्न हुए, वेदादि शास्त्रों के जानने वाले शूरवीर, जिनका लक्ष्य अर्थात् विचार निष्फल न हो और कुलीन, अच्छे प्रकार सुपरीक्षित सात व आठ उत्तम धार्मिक चतुर मन्त्री करें।

ग्रन्थ की पवित्रता, बुद्धिमान, निश्चित बुद्धि, पदार्थों के संग्रह करने में प्रति चतुर सुपरीक्षित मन्त्री करे।। (स० प्र०)

राजदूत का लक्ष्य

जो प्रशंसित कुल में उत्पन्न चतुर, पवित्र हावभाव और चेष्टा से भीतर हृदय और भविष्यत् में होने वाली बात का जानने हारा, सब शास्त्रों में विशारद चतुर है, उस दूत को भी रक्खे।

वह ऐसा हो कि सत् कार्य में अत्यन्त उत्साह प्रीतियुक्त, निष्कपटी, पवित्रात्मा, चतुर, बहुत समय की बात को भी न भूलने वाला, देश और कालानुकूल वर्तमान का कर्त्ता, सुन्दर रूप युक्त, निर्भय और बड़ा करता हो वही राजा का दूत होने में प्रशस्त है।

(स० प्र०)

झूठे गवाह को दण्ड

जो लोभ मोह, भय, मित्रता, काम, क्रोध, अज्ञान और बालकपन से साक्षी देवे वह सब मिथ्या समझी जावे। इनमें से किसी स्थान में साक्षी झूठ बोले उसको वक्ष्यमाण अनेकविध दण्ड दिया करे।

(स० प्र०)

८ आर्य्यावर्त्त महिमा

आर्य्यावर्त्त का अर्थ

आर्य्यावर्त्त, देश इस भूमि का नाम इसलिए है कि इसमें आदि सृष्टि से आर्य्य लोग निवास करते हैं, परन्तु इसकी अवधि उत्तर में हिमालय, दक्षिण में विन्ध्याचल, पश्चिम में अटक और पूर्व में ब्रह्मपुत्र नदी हैं, इन चारों के बीच में जितना देश है उसको "आर्य्यावर्त्त" कहते हैं और जो इनमें सदा रहते हैं, उनको भी "आर्य" कहते हैं।

(स्व. म. म.)

आर्य्यावर्त्त से अन्य देशों में विद्या फैली

जितनी विद्या भूगोल में फैली है वह सब आर्य्यावर्त्त देश से मिस्रवालों, उनसे यूनानी, उनसे रोम और उनसे यूरोप देश में, उनसे अमेरिका आदि देशों में फैली है।

(स. प्र. स. ११)

आर्यावर्त्त देश को महाभारत युद्ध ने नष्ट कर दिया

आर्य्यावर्त्त ऐसे शिरोमणि देश को महाभारत युद्ध ने ऐसा धक्का दिया कि अब तक भी यह अपनी पूर्व दिशा में नहीं आया, क्योंकि जब भाई को भाई मारने लगे तो नाश होने में क्या सन्देह ?

(स. प्र. स. ११)

आर्यावर्त्त देश की महत्ता व प्रशंसा

यह आर्य्यावर्त्त देश ऐसा है कि जिसके सदृश भूगोल में दूसरा कोई देश नहीं है, इसलिए इस भूमि का नाम सुवर्ण भूमि है, सृष्टि की आदि में आर्य्य लोग इसी देश में आकर बसे। आर्य्य नाम

उत्तम पुरुषों का है और आर्य्यों से भिन्न मनुष्यों का नाम दस्यु है । जितने भूगोल में देश हैं वे सब इसी देश की प्रशंसा करते और आशा रखते हैं कि पारसमणि पत्थर सुना जाता है वह बात तो झूठी है परन्तु आर्य्यावर्त देश ही सच्चा पारसमणि है कि जिसको लोहे रूप दरिद्र विदेशी छूते के साथ ही सुवर्ण अर्थात् धनाढ्य हो जाते हैं ।

(स. प्र. स. ११)

आर्य्यों का चक्रवर्ती राज्य

सृष्टि से लेके पाँच सहस्र वर्षों से पूर्व समय पर्यन्त आर्य्यों का सार्वभौम चक्रवर्ती अर्थात् भूगोल में सर्वोपरि एकमात्र राज्य था, अन्य देश में माण्डलिक अर्थात् छोटे-छोटे राजा रहते थे । जब रघुगण राजा थे तब रावण भी यहाँ के आधीन था । जब रामचन्द्र के समय में विरुद्ध हो गया तो उसको रामचन्द्र ने दण्ड देकर राज्य से नष्टकर उसके भाई विभीषण को राज्य दिया था । अत: सृष्टि से लेकर महाभारत पर्यन्त चक्रवर्ती सार्वभौम राजा आर्यकुल में ही हुए थे । अब इनके सन्तानों का अभाग्योदय से राजभ्रष्ट होकर विदेशियों के पादाक्रांत हो रहे हैं । (स. प्र. स. ११)

आर्य्यों का सर्व भूगोल में राज्य

इक्ष्वाकु से लेकर कौरव पांडव तक सर्व भूगोल में आर्यों का राज्य रहा । अब अभाग्योदय से और आर्यों के आलस्य, प्रमाद, परस्पर के विरोध से अन्य देशों के राज्य करने की तो कथा ही क्या कहनी, किन्तु आर्य्यावर्त्त में भी आर्य्यों का अखंड स्वतन्त्र, स्वाधीन निर्भय राज्य इस समय नहीं है । जो कुछ है सो भी विदेशियों से पादाक्रांत हो रहा है । कुछ थोड़े राजा स्वतन्त्र हैं । दुर्दिन जब आता है तब देशवासियों को अनेक प्रकार का दुःख भोगना

पड़ता है। (स. प्र. स. ८)

देश देशान्तर भ्रमण में ऐश्वर्य प्राप्ति

पहले आर्य्यावर्त्त देशीय लोग व्यापार, राजकार्य और भ्रमण के लिए सब भूगोल में घूमते थे। जो मनुष्य देश देशान्तर और द्वीप द्वीपान्तर में जाने आने में शंका नहीं करते वे देश देशान्तर के अनेकविध मनुष्यों के समागम, रीति, भाँति देखने अपना राज्य और व्यवहार (व्यापार) बढ़ाने से निर्भय शूरवीर होने लगते और अच्छे व्यवहार का ग्रहण, बुरी बातों के छोड़ने में तत्पर होके बड़े ऐश्वर्य को प्राप्त होते हैं। (स. प्र. स. १०)

स्व संस्कृति को त्यागना अच्छा नहीं

जब आर्य्यावर्त्त में उत्पन्न हुए हैं और इसी देश का अन्न जल खाया पिया, अब भी खाते पीते हैं, अपने माता, पिता, पितामहादि के मार्ग को छोड़ दूसरे विदेशी मतों पर अधिक झुक जाना, संस्कृत विद्या से रहित अपने को विद्वान् प्रकाशित करना, इङ्गलिश भाषा पढ़के पण्डिताभिमानी होकर झटिति एक मत चलाने में प्रवृत्त होना मनुष्यों का स्थिर और वृद्धिकारक काम नहीं हो सकता।

(स. प्र. स. ११)

६–गोवंश गरिमा

गोवंश से मनुष्य मात्र का पोषण

एक गाय की एक पीढ़ी में ४,७५,६०० मनुष्य एक बार पालित होते हैं और पीढ़ी पर पीढ़ी बढ़ा कर लेखा करें तो असंख्यात मनुष्यों का पालन होता है। गाय के दूध घी से जितने बुद्धि वृद्धि से लाभ

होते हैं उतने भैंस के दूध से नहीं, इससे मुख्योपकारक आर्यों ने गाय को गिना है। (स. प्र. स. १०)

गोवध से देश में दुःख की वृद्धि

देखो! जब आर्य्यों का राज्य था तब ये महोपकारक गाय आदि पशु नहीं मारे जाते थे, तभी आर्य्यावर्त्त व अन्य भूगोल देशों में बड़े आनन्द में मनुष्यादि प्राणि वर्त्तते थे, क्योंकि दूध, घी, बैल आदि पशुओं की बहुताई होने से अन्न रस पुष्कल प्राप्त होते थे, जब से विदेशी मांसाहारी इस देश में आके गौ आदि पशुओं के मारने वाले मद्यपानी राज्याधिकारी हुए हैं तब से क्रमशः आर्य्यों के दुःख की बढ़ती होती जाती है। (स. प. स. १०)

१०--विविध

सुख दुःख का योग

सुख दुःख का योग आत्मा में हुआ करता है। जहाँ विद्यारूप सूर्य का अभाव और अविद्यान्धकार का भाव है, वहाँ दुःखों की तो भरमार, सुख की क्या कहना है? और जहाँ विद्यार्क प्रकाशित होकर अविद्यान्धकार को नष्ट कर देता है, उस आत्मा में सदा आनन्द का योग और दुःख का ठिकाना भी नहीं मिलता है!

मानव का विशिष्ट गुण

जितने मनुष्य से भिन्न जातिस्थ प्राणी हैं उनमें दो प्रकार का स्वभाव है—वलवान् से डरना, निर्बल को डराना और पीड़ा कर अर्थात् दूसरे का प्राण तक निकाल के अपना मतलब साध लेना देखने में आता है। जो मनुष्य ऐसा ही स्वभाव रखता है उसको भी इन्हीं जातियों में गिनना उचित है परन्तु निर्बलों पर दया उनका उपकार और निर्बलों को पीड़ा देने वाले अधर्मी बलवानों से किंचित्-

मात्र भी भय शंका न करके पर पीड़ा से हटाके निर्बलों की रक्षा तन, मन, धन से सदा करता है, वही मनुष्य जाति का निज गुण है।

(व्यवहार भानु)

विवाह किसके आधीन रहे ?

लड़का-लड़की के आधीन विवाह होना उत्तम है। जो माता-पिता विवाह करना कभी विचारें तो लड़का-लड़की की प्रसन्नता के विना न होना चाहिए क्योंकि एक दूसरे की प्रसन्नता से विवाह होने में विरोध बहुत कम होता और सन्तान उत्तम होते हैं। अप्रसन्नता के विवाह में नित्य क्लेश ही रहता है। विवाह में मुख्य प्रयोजन वर और कन्या का है, माता पिता का नहीं, क्योंकि जो उनमें परस्पर प्रसन्नता रहे तो उन्हीं को सुख और विरोध में उन्हीं को दुःख होता है। (स. प्र. स. ४)

अति श्रेष्ठ दान

संसार में जितने दान हैं अर्थात् जल, अन्न, गौ, पृथिवी, वस्त्र, तिल, सुवर्ण और घृतादि इन सब दानों से वेद विद्या का दान अति-श्रेष्ठ है। इसलिए जितना बन सके उतना प्रयत्न तन, मन, धन से विद्या की वृद्धि में किया करें। जिस देश में यथायोग्य ब्रह्मचर्य, विद्या और वेदोक्त धर्म का प्रचार होता है वही देश सौभाग्यवान् होता है। (स० प्र० तृ० स०) (स ३स)

धर्म का ज्ञान कैसे ?

धर्म का ज्ञान तीन प्रकार से होता है। एक तो धर्मात्मा विद्वानों की शिक्षा, दूसरा आत्मा की शुद्धि तथा सत्य को जानने की इच्छा

और तीसरा परमात्मा की कही वेद विद्या को जानने से ही मनुष्यों

को सत्य असत्य का यथावत् बोध होता है, अन्यथा नहीं।

(ऋ० वेदो०)

जड़बुद्धि और तीव्र बुद्धि

जो आप तो समझ ही न सके परन्तु दूसरे के समझाने से भी न समझे वह 'जड़बुद्धि' और जो समझाने से झटपट समझे और थोड़े ही समझाने से बहुत समझ जाये वह 'तीव्रबुद्धि' कहाता है।

(व्य० भा०)

शूरवीर कौन ?

जो मनुष्य वेदादि शास्त्रों के पढ़ने-पढ़ाने में शूरवीर अर्थात् दुष्टों के दलन और श्रेष्ठों के पालन में शूरवीर, अर्थात् दृढ़ोत्साही उद्योगी। जो निष्कपट परोपकारक अध्यापकों की सेवा करके शूरवीर जो अपने जनक (पिता) की सेवा करके शूरवीर, जो माता की परिचर्या से शूर, जो संन्यासाश्रम से युक्त अतिथिरूप होकर सर्वत्र भ्रमण करके परोपकार करने में शूर, जो वानप्रस्थाश्रम के कर्म और गृहाश्रम के व्यवहार में शूर होते हैं, वे ही सब सुखों के लाभ करने कराने में अत्युत्तम होके धन्यवाद के पात्र होते हैं कि जो अपना तन, मन, विद्या और धर्मादि का शुभ गुण ग्रहण करने में सदा उपयुक्त करते हैं।

(व्य० भानु)

सभी धर्मात्मा हो सकते हैं

विद्वान् होने का तो सम्भव नहीं परन्तु जो धर्मात्मा हुआ चाहें तो सभी हो सकते हैं। अविद्वान् लोग दूसरों का धर्म में निश्चय नहीं करा सकते और विद्वान् लोग धार्मिक होकर अनेक मनुष्यों को

भी धार्मिक कर सकते है और कोई धूर्त मनुष्य अविद्वान् को वहका के अधर्म में प्रवृत्त कर सकता है किन्तु विद्वान् को अधर्म में कभी नहीं चला सकता। (व्य० भानु)

मुर्दा गाड़ना

मुर्दे गाड़ने से संसार की बड़ी हानि होती है क्योंकि वह सड़ के वायु को दुर्गन्धमय कर रोग फैला देता है। जिस जीवात्मा से प्रीति थी वह तो निकल गया, अब दुर्गन्धमय मिट्टी से क्या प्रीति ? दूसरे एक मुर्दे के लिए कम से कम ६ हाथ लम्बी ४ हाथ चौड़ी भूमि चाहिए—इससे करोड़ों मनुष्यों के लिए कितनी भूमि व्यर्थ रुक जाती है जो भूमि न वगीचा और न वसने के काम की रहती है। इसलिए सबसे बुरा गाड़ना और उससे कुछ थोड़ा बुरा जल में डालना है वा उससे कुछ एक थोड़ा बुरा जंगल में छोड़ना है। और जो जलाना है वह सर्वोत्तम है क्योंकि उसके सब पदार्थ अणु होकर वायु में उड़ जायेंगे। (स. प्र. स. १३)

ईश्वरीय नियम के विरुद्ध न मानना

जो ईश्वर का नियम है उसको कोई नहीं तोड़ सकता। जो परमेश्वर ही नियम को उलटा पलटा करे तो उसकी आज्ञा को कोई न माने और परमेश्वर भी सर्वज्ञ और निर्भ्रम न रहे। जो ईश्वरीय नियम के विरुद्ध वातों को आँख मूंदकर मानते हैं वे भ्रम जाल में गिरते हैं। (स. प्र. स. १२)

अन्यायकारी बलवान् से भी न डरे

मनुष्य उसी को कहना कि मननशील होकर स्वात्मवत् अन्यों के सुख दुःख और हानि लाभ को समझे। अन्यायकारी बलवान् से भी

न डरे और धर्मात्मा निर्बल से भी डरता रहे। अपने सर्वसामर्थ्य से धर्मात्माओं की रक्षा, उन्नति, प्रियाचरण और अधर्मी चाहे चक्रवर्ती सनाथ, महाबलवान् और गुणवान् भी हो तथापि उसका नाश, अवनति और अप्रियाचरण सदा किया करे। अर्थात् जहाँ तक हो सके वहाँ तक अन्यायकारियों के बल की हानि और न्यायकारियों के बल की उन्नति सर्वथा किया करे। (स्व. मं. मं.)

आर्य्यावर्त्त में ज्ञान विज्ञान

यह निश्चय है कि जितनी विद्या और मत भूगोल में फैले हैं वे सब आर्यावर्त्त देश ही से प्रचारित हुए हैं।

देखो ! कि एक "जैकालियट" साहब पैरिस अर्थात् फ्रांस देश निवासी अपनी 'बाइबिल इन इण्डिया' में लिखते हैं कि सब विद्या और भलाइयों का भंडार आर्यावर्त्त देश है और सब विद्या तथा मत इसी देश से फैले हैं। और परमात्मा से प्रार्थना करते हैं कि :—

'हे परमेश्वर ! जैसी उन्नति आर्यावर्त्त देश की पूर्वकाल में थी वैसी ही हमारे देश की कीजिए।'

(स० प्र० प्र० २३६)

काशी का मान मन्दिर

देखो, काशी के "मान मन्दिर" में शिशुमारचक्र को कि जिसकी रक्षा भी नहीं रही है तो भी कितना उत्तम है कि जिसमें अब तक भी खगोल का बहुत सा वृत्तान्त विदित होता है।

पाण्डवों के राजसूय यज्ञ में

सुनो ! चीन का भगदत्त, अमेरिका का बब्रुवाहन, यूरोप देश का विडालाक्ष अर्थात् मार्जार के सदृश आंखों वाले, यवन जिसको यूनान कह आये और ईरान का शल्य आदि सब राजा राजसूय यज्ञ और महाभारत युद्ध में आज्ञानुसार आए थे।

शंकराचार्य के तीन सौ वर्ष के पश्चात् उज्जैन नगरी में विक्रमादित्य राजा कुछ प्रतापी हुआ, जिसने सब राजाओं के मध्य प्रवृत्त हुई लड़ाई को मिटाकर शांति स्थापना की । तत्पश्चात् भर्तृहरि राजा काव्यादि शास्त्र और अन्य में भी कुछ-कुछ विद्वान् हुआ । उसने वैराग्यवान होकर राज्य को छोड़ दिया ।

विक्रमादित्य के पांच सौ वर्ष के पश्चात् राजा भोज हुआ । उसने थोड़ा-सा व्याकरण और काव्यालंकारादि का इतना प्रचार किया कि उसके राज्य में कालिदास बकरी चराने वाला भी रघुवंश काव्य का कर्त्ता हुआ । राजा भोज के पास जो कोई अच्छा श्लोक बनाकर ले जाता था उसको बहुत-सा धन देते थे और प्रतिष्ठा होती थी । उसको पश्चात् राजाओं और श्रीमानों ने पटना ही छोड़ दिया ।

(स० प्र० प्र० २६०)

राजा भोज के राज्य में यंत्र कला

राजा भोज के राज्य में और समीप ऐसे-ऐसे शिल्पी लोग थे जिन्होंने घोड़े के आकार का एक यान यन्त्र कलायुक्त बनाया था कि जो एक कच्ची घड़ी में ग्यारह कोस और एक घण्टे में साढ़े सत्ताईस कोस जाता था । वह भूमि और अन्तरिक्ष में भी चलता था ।

स्वयं चलने वाला पंखा

और दूसरा पंखा ऐसा बनाया था कि बिना मनुष्य के चलाये कला यन्त्र के बल से नित्य चला करता और पुंष्कल वायु देता था ॥

जो ये दोनों पदार्थ आज तक बने रहते तो यूरोपियन इतने

अभिमान में न चढ़ जाते।

(स० प्र० प्र० २६२)

आग्नेयास्त्र

जैसे कोई एक लोहे का बाण का गोला बनाकर उसमें ऐसे पदार्थ रक्खे कि जो अग्नि के लगाने से वायु धुँआ फैलने और सूर्य की किरण वा वायु के स्पर्श होने से अग्नि जल उठे इसी का नाम 'अग्नेयास्त्र' है।

वारुणास्त्र

जब दूसार इसका निवारण करना चाहे तो उसी पर वारुणास्त्र, छोड़ दे अर्थात् जैसे शत्रू ने शत्रु की सेना पर आग्नेयास्त्र छोड़कर नष्ट करना चाहा वैसे ही अपनी सेना की रक्षार्थ सेनापति वारुणास्त्र से आग्नेयास्त्र का निवारण करे। वह ऐसे द्रव्यों के योग से होता है जिसका धुआं वायु के स्पर्श होते ही बद्दल होके झट वरसने लग जावे।

नागफांस

ऐसे ही 'नागफांस' अर्थात् जो शत्रु पर छोड़ने से उसके अङ्गो को जकड़ के बांध लेता है।

मोहनास्त्र

वैसे ही एक 'मोहनास्त्र' अर्थात् जिसमें नशे की चीज डालने से जिसके धुयें के लगने से सब शत्रु की सेना निद्रास्थ अर्थात् मूर्छित

हो जाय ।

पाशुपतास्त्र

एक तार से व शीशे अथवा किसी और पदार्थ से विद्युत् उत्पन्न करके शत्रुओं का नाश करते थे, उसको भी 'आग्नेयास्त्र' तथा 'पाशुपतास्त्र' कहते हैं ।

तोप और बन्दूक

जिसको विदेशी जन 'तोप' कहते हैं, संस्कृत भाषा में उसका नाम "शतघ्नी" और जिसको 'बन्दूक' कहते हैं, उसको संस्कृत और आर्य (संस्कृत) भाषा में भुशुण्डी कहते हैं ।

(स० प्र० ए० स०)

शिल्प विद्या

अथर्ववेद कि जिसको शिल्प विद्या कहते हैं, उसको पदार्थ, गुण-विज्ञान, क्रिया-कौशल, नानाविधि पदार्थों का निर्माण, पृथ्वी से लेके आकाश पर्यन्त की विद्या को यथावत् सीख के अर्थ अर्थात् जो ऐश्वर्य को बढ़ाने वाला है । (स० प्र० तृ० स०)

ज्योतिष शास्त्र

ज्योतिष शास्त्र सूर्य सिद्धान्तादि जिसमें बीजगणित, अंक, भूगोल, खगोल और भूगर्भ विद्या है, इसको यथावत् सीखें ! तत्पश्चात् सब प्रकार की हस्तक्रिया, यन्त्रकला आदि को सीखें, परन्तु जितने ग्रह, नक्षत्र, जन्मपत्र, राशि, मुहूर्त आदि के फल के विधायक ग्रन्थ हैं उनको झूठ समझके कभी न पढ़ें पढ़ावें ।(स० प्र०तृ० स०)

सब वेदों को पढ़ के आयुर्वेद अर्थात् जो चरक, सुश्रुत आदि ऋषि-मुनिप्रणीत वैद्यकशास्त्र है उसको अर्थ, क्रिया, शास्त्र, छेदन, भेदन, लेप, चिकित्सा, नियम, औषध, पथ्य, शरीर, देश, काल और वस्तु को गुण-ज्ञान पूर्वक चार वर्ष के भीतर पढ़ें पढ़ावें।

(स० प्र० तृ० स०)

राज विद्या

धनुर्वेद अर्थात् जो राजसम्बन्धी काम करना है, इसके दो भेद हैं, एक निज राज-पुरुषसम्बन्धी और दूसरा प्रजासम्बन्धी होता है। राज कार्य में सभा के व्यूहों का अभ्यास अर्थात् जिसको आज-कल "कवायद" कहते हैं, जो कि शत्रुओं से लड़ाई के समय में क्रिया करनी होती है उसको यथावत् सीखें और जो-जो प्रजा के पालन और वृद्धि करने का प्रकार है उनको सीख के न्यायपूर्वक सब प्रजा को प्रसन्न रक्खें, दुष्टों को यथायोग्य दण्ड, श्रेष्ठों के पालन का प्रकार सब प्रकार सीख लें। उस राजविद्या को दो वर्ष में सीखकर गान्धर्व वेद कि जिसको—

(स० प्र० तृ० स०)

गान विद्या

कहते हैं उसमें स्वर, राग, रागिणी, समय, ताल, ग्राम, तान वादित्र, नृत्य, गीत आदि को यथावत् सीखें परन्तु मुख्य करके सामवेद का गान वादित्रवादन पूर्वक सीखें और नारद-संहिता आदि जो-जो आर्ष ग्रन्थ हैं, उनको पढ़ें, परन्तु भड़वे वेश्याओं के विषयासक्ति कारक और वैरागियों के गर्दभशब्दवत् व्यर्थ आलाप कभी न करें।

(स० प्र० तृ० स०)

कपोल कल्पित मिथ्या ग्रंथों का त्याग

जो-जो ग्रन्थ नीचे लिखेंगे वह वह जाली ग्रन्थ समझना चाहिए। व्याकरण में कातन्त्र, सारस्वत, चन्द्रिका, मुग्धबोध, कौमुदी, शेखर, मनोरमा आदि···। ज्योतिष में शीघ्रबोध, मुहूर्तचिन्तामणि आदि। काव्य में नायिकाभेद, कुवालयानन्द, रघुवंश, किरातार्जुनीय आदि···। मीमांसा में धर्मसिन्धु, वृतार्क आदि। वैशेषिक में तर्क संग्रहादि। न्याय में जागदीशी आदि। योग में हठयोगप्रदीपिकादि। सांख्य में सांख्यतत्वकौमुद्यादि। वेदान्त में योगवाशिष्ठ, पंचदशी आदि। वैधक में शार्ङ्गधरादि। स्मृतियों में मनुस्मृति के प्रक्षिप्त श्लोक और अन्य सब स्मृति। सब तंत्रग्रन्थ, सब पुराण, सब उप-पुराण, तुलसीदास कृत भाषा रामायण, रुक्मिणी मंगल आदि और भाषा ग्रन्थ ये सब कपोल कल्पित मिथ्या ग्रन्थ हैं। (स०प्र०तृ०स०)

विद्या विघ्न से रोगी और मूर्ख

जो विद्या पढ़ने पढ़ाने के विघ्न है, उनको छोड़ देवे, जैसे कुसंग अर्थात् दुष्ट विषयी जनों का संग, दुष्टव्यसन जैसा मद्यादि सेवन और वेश्यगमनादि, बाल्यावस्था में विवाह अर्थात् पच्चीसवें वर्ष से पूर्व पुरुष और सोलहवें वर्ष से पूर्व स्त्री का विवाह हो जाना, पूर्ण ब्रह्मचर्य न होना; राजा, माता पिता और विद्वानों का प्रेम वेदादि शास्त्रों के प्रचार में न होना; अति भोजन, अति जागरण करना; पढ़ने पढ़ाने, परीक्षा लेने वा देने में आलस्य व कपट करना, सर्वोपरि विद्या का लाभ न समझना; ब्रह्मचर्य का बल, बुद्धि, पराक्रम, आरोग्य, राज्य, धन की वृद्धि न मानना, ईश्वर का ध्यान छोड़ अन्य पाषाणादि जड़मूर्ति के दर्शन पूजन में व्यर्थ काल खोना; माता पिता, अतिथि और आचार्थ, विद्वान् इनको सत्यमूर्ति मानकर सेवा सत्संग न करना; वर्णाश्रम के धर्म को छोड़ उर्ध्वपुण्ड्र, त्रिपुण्ड्र, तिलक, कण्ठी, माला-

धारण, एकादशी, त्रयोदशी, आदि व्रत करना, काश्यादि तीर्थ और राम, कृष्ण, नारायण, शिव भगवा, गणेश आदि के नामस्मरण से पाप दूर होने का विश्वास; पाखंडियों के उपदेश से विद्या पढ़ने में अश्रद्धा का होना; विद्या, धर्म, योग, परमेश्वर की उपासना के विना मिथ्या पुराणनामक भागवतादि की कथादि से मुक्ति का मानना; लोभ से धनादि में प्रवृत्त होकर विद्या से प्रीति न रखना, इधर उधर व्यर्थ घूमते रहना इत्यादि मिथ्या व्यवहारों में फंस के ब्रह्मचर्य और विद्या के लाभ से रहित होकर रोगी और मूर्ख बने रहते हैं।

(स० प्र० तृ० स०)

आचार्य द्वारा दीक्षान्त भाषण

आचार्य अन्तेवासी अर्थात् अपने शिष्य और शिष्याओं को इस प्रकार उपदेश करे कि :

तू सदा सत्य बोल, धर्माचरण कर, प्रमाद रहित होके पढ़ पढ़ा, पूर्ण ब्रह्मचर्य से समस्त विद्याओं को ग्रहण और आचार्य के लिए प्रिय धन देकर विवाह करके सन्तानोत्पत्ति कर, प्रमाद से सत्य को कभी मत छोड़, प्रमाद से धर्म का त्याग मत कर, प्रमाद से आरोग्य और चतुराई को मत छोड़, प्रमाद से उत्तम ऐश्वर्य की वृद्धि को मत छोड़, प्रमाद से पढ़ने और पढ़ाने को कभी मत छोड़। विद्वान और माता-पितादि की सेवा में प्रमाद मत कर। जैसे विद्वान का सत्कार करे, उसी प्रकार माता, पिता, आचार्य और अतिथि की सेवा सदा किया कर। जो अनिन्दित धर्मयुक्त कर्म हैं, उन सत्यभाषणादि को किया कर, उनसे भिन्न मिथ्याभाषणादि कभी मतकर, जो हमारे सुचरित्र अर्थात् धर्मयुक्त कर्म हों उनका ग्रहण कर और जो हमारे पापाचरण हों उनको कभी मत कर। जो कोई हमारे मध्य में, उत्तम विद्वान् धर्मात्मा ब्राह्मण हैं, उन्हीं के समीप बैठ और उन्हीं का विश्वास, किया कर।

श्रद्धा से देना, अश्रद्धा से देना, शोभा से देना, लज्जा से देना,

भय से देना और प्रतिज्ञा से भी देना चाहिये।

जब कभी तुमको कर्म वा शील तथा उपासना ज्ञान के किसी प्रकार का संशय उत्पन्न हो तो। जो वे विचारशील पक्षपातरहित योगी अयोगी आर्द्रचित्त धर्म की कामना करने वाले धर्मात्मा जन हों जैसे वे धर्म मार्ग से वर्तें वैसे तू भी उसे वर्ता कर।

यही आदेश आज्ञा, यही उपदेश, यही वेद की उपनिषत् और यही शिक्षा है।

इसी प्रकार वर्त्तना और अपना चालचलन सुधारना चाहिए।

(स० प्र० तृ० स०)

विद्या का अधिकार सबको

इस प्रकार आचार्य अपने शिष्य को उपदेश करे और विशेषकर राजा इतर क्षत्रिय, वैश्य और उत्तम शूद्र जनों को भी विद्या का अभ्यास अवश्य करावें। क्योंकि जो ब्राह्मण हैं वे ही केवल विद्याभ्यास करें और क्षत्रियादि न करें तो विद्या, धर्म, राज्य और धनादि की वृद्धि कभी नहीं हो सकती···।

जब क्षत्रियादि विद्वान होते हैं तब ब्राह्मण भी अधिक विद्याभ्यास और धर्मपथ में चलते हैं और उन क्षत्रियादि विद्वानों के सामने पाखण्ड झूठ व्यवहार भी नहीं कर सकते और जब क्षत्रियादि अविद्वान होते हैं तो वे जैसा अपने मन में आता है वैसा ही करते कराते हैं।

इसलिए ब्राह्मण भी अपना कल्याण चाहें तो क्षत्रियादि को वेदादि सत्यशास्त्र का अभ्यास अधिक प्रयत्न से करावें। क्योंकि क्षत्रियादि ही विद्या, धर्म, राज्य और लक्ष्मी वृद्धि करने हारे हैं, वे कभी भिक्षावृत्ति नहीं करते, इसलिए वे विद्या व्यवहार में पक्षपाती भी नहीं हो सकते।

(स प्र०)

धर्म और अधर्म

जो पक्षपात रहित विचरण, सत्यभाषणादि युक्त ईश्वराज्ञा वेदों से अविरुद्ध है उसको धर्म और जो पक्षपात सहित, अन्यायाचरण, मिथ्याभाषणादि ईश्वराज्ञाभंग वेद विरुद्ध है, उसको अधर्म मानता हूँ। (स्व. म. म.)

अर्थ, अनर्थ व काम

अर्थ वह है कि जो धर्म ही से प्राप्त किया जाय और जो अधर्म से सिद्ध होता है उसको अनर्थ कहते हैं। काम वह जो धर्म और अर्थ से प्राप्त किया जाय। धर्म और अर्थ से कामना अर्थात् सुख की सिद्धि करना इसको काम कहते हैं। (स्व. म. म.)

आत्मा के अनुकूल कर्म करना योग्य है

जिस-जिस कर्म में अपना आत्मा प्रसन्न रहे अर्थात् भय, शंका, लज्जा जिसमें न हो उन कर्मों का सेवन करना उचित है। देखो! जब कोई मिथ्या भाषण, चोरी आदि की इच्छा करता है तभी उसके आत्मा में भय, शंका, लज्जा अवश्य उत्पन्न होती है, इसलिए वह कर्म करने योग्य नहीं। (स. प्र. स. १०)

११--देशोन्नति की दिशा

स्वदेशीय राज्य की महत्ता

कोई कितना ही करे परन्तु जो स्वदेशीय राज्य होता है वह सर्वो-

परि उत्तम होता है। अथवा मतमतान्तर के आग्रहरहित अपने और पराये का पक्षपातशून्य, प्रजा पर पिता माता के समान कृपा, न्याय और दया के साथ विदेशियों का राज्य भी पूर्ण सुखदायक नहीं है। परन्तु भिन्न भिन्न भाषा, पृथक् पृथक् शिक्षा, अलग व्यवहार का विरोध छूटना अति दुष्कर है। विना इसके छूटे परस्पर का पूरा उपकार और अभिप्राय सिद्ध होना कठिन है। (स० प्र० स० ८)

विदेश यात्रा में दोष नहीं

धर्म हमारे आत्मा और कर्तव्य के साथ है। जब हम अच्छे काम करते हैं तो हमको देश देशान्तर और द्वीप द्वीपान्तर जाने में कुछ भी दोष नहीं लग सकता, दोष तो पाप के काम करने में लगते हैं।

(स० प्र० स० १०)

विदेशों में व्यापार करने से स्वदेश की उन्नति

जब स्वदेश ही में स्वदेशी लोग व्यवहार करते और परदेशी स्वदेश में व्यवहार वा राज्य करें तो विना दारिद्र्य और दुःख के दूसरा कुछ भी नहीं हो सकता। क्या विना देश देशान्तर में राज्य व व्यापार किए स्वदेश की उन्नति कभी हो सकती ?

(स० प्र० स० १०)

पारस्परिक एकता से देशोन्नति

जब तक एकमत, एक हानि लाभ, एक सुख दुःख परस्पर न मानें तब तक उन्नति होना बहुत कठिन है। परन्तु केवल खाना पीना ही एक होने से सुधार नहीं हो सकता किन्तु जब तक बुरी बातें नहीं छोड़ते और अच्छी बातें नहीं बरतते तब तक बढ़ती के बदले हानि होती है। (स० प्र० स० १०)

जब आपस में भाई भाई लड़ते हैं तभी तीसरा विदेशी आकर पंच बन बैठता है। आपस की फूट से कौरव पांडव और यादवों का सत्यानाश हो गया सो तो हो गया, परन्तु अब तक भी वही रोग पीछे लगा है। न जाने यह भयंकर राक्षस कभी छूटेगा व आर्य्यों को सब सुखों से छुड़ाकर दुःखसागर में डुबा मारेगा? उसी दुष्ट दुर्योधन, गोहत्यारे, स्वदेश विनाशक, नीच के दुष्टमार्ग में आर्य लोग अब तक भी चलकर दुःख बढ़ा रहे हैं। परमेश्वर कृपा करे कि यह राजरोग हम आर्यों में से नष्ट हो जाए। (स० प्र० स० १०)

उन्नति का केन्द्र ऐक्य है

एक धर्म, एक भाषा और एक लक्ष्य बनाए बिना भारत का पूर्ण हित और उन्नति का होना दुष्कर है। सब उन्नतियों का केन्द्र स्थान ऐक्य है। जहाँ भाषा, भाव और भावना में एकता आ जाए वहाँ सागर में नदियों की भाँति सारे सुख एक एक करके प्रविष्ट करने लग जाते हैं।

(ऋषि दयानन्द ने ये वाक्य उदयपुर में सन् १८८२ में कहे थे)

मातृभूमि की उन्नति आर्य समाज से मिलकर करो

जो उन्नति करना चाहो तो आर्य समाज के साथ मिलकर उस के उद्देश्यानुसार आचरण करना स्वीकार कीजिए, नहीं तो कुछ हाथ न लगेगा, क्योंकि हम और आपको अति उचित है कि जिस देश के पदार्थों से अपना शरीर बना, अब भी पालन होता है, आगे होगा, उसकी उन्नति तन मन धन से सब जने मिलकर प्रीति से करें। इसलिये जैसा आर्य समाज आर्यावर्त देश की उन्नति का कारण है वैसा दूसरा नहीं हो सकता। यदि इस समाज को यथावत सहायता देवें तो बहुत

अच्छी बात है, क्योंकि समाज का सौभाग्य बढ़ाना समुदाय का काम है, एक का नहीं। (स० प्र० स० ११)

उन्नति का मूल मंत्र

जब तक एक मत, एक हानि लाभ, एक सुख दुःख परस्पर न माने तब तक उन्नति होना बहुत कठिन है परन्तु केवल खाना-पीना ही एक होने से सुधार नहीं हो सकता। किन्तु जब तक बुरी बातें नहीं छोड़ते और अच्छी बातें नहीं करते तब तक बढ़ती के बदले हानि होती है। विदेशियों के आर्यावर्त में राज्य होने के कारण आपस की फूट, मत भेद, ब्रह्मचर्य का सेवन न करना, विद्या न पढ़ना पढ़ाना बाल्यावस्था में अस्वयंवर विवाह, विषयासक्ति, मिथ्याभाषणादि, कुलक्षण, वेद विद्या का अप्रचार आदि।

१२-सच्ची पूजा-वन्दना

सच्ची पंचदेव पूजा, पंचायतन पूजा

जो सच्ची पंचायतन वेदोक्त और वेदानुकूल देव पूजा और मूर्ति पूजा है वह सुनो। **प्रथम** माता मूर्तिमती पूजनीय देवता, अर्थात् सन्तानों को तन-मन-धन से सेवा करके माता को प्रसन्न रखना, हिंसा अर्थात् ताड़ना कभी न करना। **दूसरा** पिता सत्कर्तव्य देव, उसकी भी माता के समान सेवा करनी। **तीसरा** आचार्य जो विद्या का देने वाला है उसकी तन-मन-धन से सेवा करनी। **चौथा** अतिथि जो विद्वान्, धार्मिक, निष्कपटी, सब की उन्नति चाहने वाला, जगत् में भ्रमण करता हुआ, सत्योपदेश से सबको सुखी करता है उसकी सेवा करे। **पांचवां** स्त्री के लिए स्वपति और पुरुष के लिए स्वपत्नी

पूजनीय हैं। ये पांच मूर्तिमान देव जिनके सङ्ग से मनुष्य देह की उत्पत्ति, पालन, सत्य, शिक्षा, विद्या और सत्योपदेश की प्राप्ति होती है। ये ही परमेश्वर को प्राप्त होने की सीढ़ियाँ हैं।

(स० प्र० स० ११)

मूर्ति पूजा के दोष

देखो ! मूर्ति पूजा करने में अनेक दोष आते हैं यथा—

(१) साकार में मन स्थिर कभी नहीं हो सकता, क्योंकि उसको मन झट ग्रहण करके उसी के एक-एक अवयव में घूमता और दूसरे में दौड़ता जाता है और निराकार अनन्त परमात्मा के ग्रहण में यावत्सामर्थ्य मन अत्यन्त दौड़ता है तो भी अन्त नहीं पाता। निरवयव होने से मन चंचल भी नहीं होता, किन्तु उसी के गुण कर्म स्वभाव का विचार करता करता आनन्द में मग्न होकर स्थिर हो जाता है और जो साकार में स्थिर होता तो सब जगत् का मन स्थिर हो जाता, क्योंकि जगत् में प्रत्येक मनुष्य, स्त्री, पुत्र, धन, मित्र आदि साकार में फँसा रहता है, परन्तु किसी का मन स्थिर नहीं होता। (२) उसमें करोड़ों रुपये मन्दिरों मे व्यय करके दरिद्र होते हैं और उसमें प्रमाद होता है। (३) स्त्री, पुरुषों का मन्दिरों में मेला होने से व्यभिचार, लड़ाई, बखेड़ा और रोगादि उत्पन्न होते हैं। (४) उसी को धर्म, अर्थ, काम और मुक्ति का साधन मान के पुरुषार्थरहित होते हैं। (५) नाना प्रकार की विरुद्धस्वरूप नाम चरित्रयुक्त मूर्तियों के पुजारियों का ऐक्यमत नष्ट होके विरुद्ध मत में चलकर आपस में फूट बढ़ा के देश का नाश करते हैं। (६) उसी के भरोसे में शत्रु का पराजय और अपना विजय मान बैठे रहते हैं। जब पराजय को प्राप्त करते हैं तो राज्य स्वातन्त्र्य, धन का सुख खो, पराधीन बन, शत्रुओं के वश में होकर अनेक विधि दुःख पाते हैं। (७) जैसे किसी का आसन वा नाम पर पत्थर धर के उसे क्रोधित करे वैसे परमेश्वर के उपासना

के स्थान हृदय और नाम पर पाषाणादि मूर्तियाँ धरते हैं और परमात्मा के कोप भाजन बनते हैं। (८) भ्रान्त होकर मन्दिर-मन्दिर देशदेशान्तर में घूमते-घूमते दुःख पाते, धर्म, संसार और परमार्थ का काम नष्ट करते, चोरादि से पीड़ित होते, ठगों से ठगाते रहते हैं। (९) दुष्ट पुजारियों को धन देते जिसे वे कुत्सित आचार-विहार, मद्य मांस सेवन व लड़ाई झगड़े में व्यय करते, जिस से दाता का सुख का मूल नष्ट होता हैं। (१०) माता-पिता आदि माननीयों का अपमान व पाषाणादि मूर्तियों का मान करके कृतघ्न हो जाते हैं। (११) उन मूर्तियों को कोई तोड़ डालता व चोर ले जाता है तब हाय हाय करके रोते हैं। (१२) पुजारी परस्त्रियों के सङ्ग व पुजारिन परपुरुषों के सङ्ग से प्रायः दूषित होकर स्त्री, पुरुष के प्रेम के आनन्द को हाथ से खो बैठते हैं। (१३) स्वामी सेवक की आज्ञा पालन यथावत् न होने से परस्पर विरुद्ध भाव होकर नष्ट-भ्रष्ट हो जाते हैं। (१४) जड़ का ध्यान करने वाले का आत्मा भी जड़बुद्धि हो जाता है। (१५) परमेश्वर ने सुगन्धियुक्त, पुष्पादि पदार्थ वायु जल के दुर्गन्ध निवारण और आरोग्यता के लिए बनाए हैं। उन्हें तोड़कर मन्दिर में चढ़ा देने से वे कीच में मिलकर उल्टा दुर्गन्ध करते हैं। उनकी पूर्ण सुगन्धि के समय तक न होकर जलवायु की शुद्धि नहीं हो पाती और बीच में ही उसका नाश हो जाता है। (१६) पत्थर पर चढ़े हुए पुष्प चन्दन और अक्षत आदि सबका जल और मृत्तिका के संयोग या मोरी वा कुण्ड में आकर सड़कर अन्यन्त दुर्गन्ध उत्पन्न करते हैं और सहस्रों जीव उसमें पड़ते और सड़ते हैं। इसलिए सज्जनों को पाषाणादि मूर्ति पूजा सर्वथा त्यक्तव्य है! जो पाषाणमय मूर्तिपूजा करते हैं व करेंगे वे इन दोषों से कभी नहीं बच सकते। (स० प्र० स० ११)

शूर वीरों की पूजा करो!

देखो! जितनी मूर्तियाँ हैं उतनी शूरवीरों की पूजा करते थो

भी किसी रक्षा होती। पुजारियों ने इन पाषाणों की उतनी भक्ति की परन्तु मूर्ति एक भी उन (शत्रुओं) के शिर पर उड़ के न लगी। जो किसी एक शूरवीर पुरुष की मूर्ति के सदृश सेवा करते तो वह अपने सेवकों को यथाशक्ति बचाता और उन शत्रुओं को मारता।

जब संवत् १९१४ के वर्ष में तोपों के मारे मन्दिर मूर्तियाँ अंग्रेजों ने उड़ादी थीं तब मूर्ति कहाँ गई थीं? प्रत्युत बाघेर लोगों ने जितनी वीरता की और लड़े शत्रुओं को मारा परन्तु मूर्ति एक मक्खी की टांग भी न तोड़ सकी। जो श्री कृष्ण के सदृश कोई होता तो इनके धुर्रे उड़ा देता और वे भागते फिरते। (स० प्र० स० ११)

नाम स्मरण से पाप नहीं छूटता

नाम स्मरण से पाप कभी नहीं छूटता? जो छूटे तो दुःखी कोई न रहे। और पाप करने से कोई न डरे, मूढ़ों को विश्वास है कि हम पाप कर नाम स्मरण वा तीर्थ यात्रा करेंगे तो पापों की निवृत्ति हो जाएगी। इस विश्वास पर पाप करके इस लोक और परलोक का नाश करते हैं। पर किया हुआ पाप भोगना ही पड़ता हैं।

(स० प्र० स० ११)

सच्चा तीर्थ

सच्चे तीर्थ :—(१) वेदादि सत्य शास्त्रों का पढ़ना-पढ़ाना (२) धार्मिक विद्वानों का संग (३) परोपकार (४) धर्मानुष्ठान (५) योगाभ्यास (६) निर्वैर (७) निष्कपट (८) सत्यभाषण (९) सत्य का मानना (१०) सत्य करना (११) ब्रह्मचर्य (१२) आचार्य, अतिथि, माता पिता की सेवा (१३) परमेश्वर की स्तुति, प्रार्थना, उपासना (१४) शान्ति (१५) जितेन्द्रियता (१६) सुशीलता (१७) धर्म युक्त पुरुषार्थ (१८) ज्ञान, विज्ञान आदि शुभगुण कर्म दुःखों से तारने वाले होने से तीर्थ हैं। (स० प्र० स० ११)

तर्पण और श्राद्ध

जिस कर्म को करके विद्वान् रूप देव, ऋषि और पितरों को सुख युक्त करते हैं सो तर्पण कहाता है। तथा जो उन लोगों की श्रद्धा पूर्वक सेवा करना है, उसी को श्राद्ध मानना चाहिए। यह तर्पण आदि कर्म विद्यमान अर्थात् जीते हुए जो प्रत्यक्ष है, उन्हीं में घटता है मरे हुओं में नहीं। क्योंकि मृतकों का प्रत्यक्ष होना असम्भव है, इसलिए उनकी सेवा नहीं हो सकती।

(ऋ० भा० पितृ०)

नाम स्मरण की रीति

नाम स्मरण इस प्रकार करना चाहिए :—जैसे "न्यायकारी" ईश्वर का एक नाम है। इस नाम से जो इसका अर्थ है कि जैसे पक्षपात रहित होकर परमात्मा सबका यथावत् न्याय करता है वैसे उस को ग्रहण कर न्याययुक्त व्यवहार सर्वदा करना, अन्याय कभी न करना। इस प्रकार एक नाम से भी मनुष्य का कल्याण हो सकता है। अन्यथा केवल नाम स्मरण से कुछ भी फल नहीं होता, जैसे मिश्री कहने से मुँह मीठा नहीं होता जब तक जीभ से चखी न जाए। परमेश्वर के नामों का अर्थ जानकर परमेश्वर के गुण कर्म स्वभाव के अनुकूल अपने गुण, कर्म स्वभाव को करते जाना ही परमेश्वर का नाम स्मरण है।

(स० प्र० स० ११)

अनादि पदार्थ

अनादि पदार्थ तीन हैं। एक ईश्वर, द्वितीय जीव, तीसरा प्रकृति अर्थात् जगत् का कारण। इन्हीं को नित्य भी कहते हैं। जो नित्य पदार्थ हैं, उनके गुण, कर्म, स्वभाव भी नित्य हैं।

(स्व० म० म०)

देव पूजा

उन्हीं विद्वानों, माता, पिता, आचार्य, अतिथि, न्यायकारी राजा और धर्मात्मा जन, पतिव्रता स्त्री और स्त्रीव्रत पति का सत्कार करना 'देव पूजा' कहाती है। उससे विपरीत अदेव पूजा।

(स० प्र०)

महात्मा श्री कृष्ण जी

देखो! श्रीकृष्ण जी का इतिहास महाभारत में अत्युत्तम है। उनका गुण, कर्म, स्वभाव और चरित्र आप्त पुरुषों के सदृश है। जिसमें कोई अधर्म का आचरण श्रीकृष्ण जी ने जन्म से मरण पर्यंन्त बुरा काम कुछ भी किया हो ऐसा नहीं लिखा। और इस भागवत वाले ने अनुचित मनमाने दोष लगाये हैं। जिसको पढ़-पढ़ा सुन-सुना के अन्य मत वाले श्री कृष्ण जी की वहुत-सी निन्दा करते हैं। जो यह भागवत न होता तो श्री कृष्ण जी के सदृश महात्माओं की झूठी निन्दा क्यों कर होती।

(स० प्र० स० ११)

श्री राम, श्री कृष्ण आदि का उपहास और निन्दा

देखो! मूर्तिपूजा से श्री रामचन्द्र, श्री कृष्ण, नारायण और शिव आदि की बड़ी निन्दा और उपहास होता है। सब कोई जानते हैं कि वे बड़े महाराजाधिराज और उनकी स्त्री सीता तथा रुक्मिणी, लक्ष्मी और पार्वती आदि महाराणियाँ थीं, परन्तु उनकी मूर्तियाँ मन्दिर आदि में रख के पुजारी लोग उनके नाम से भीख माँगते हैं, अर्थात् उनको भिखारी बनाते हैं। भला कहो तो सीतारामादि ऐसे दरिद्र और भिक्षुक थे? यह उनका उपहास और निन्दा नहीं तो क्या है? इससे अपने माननीय पुरुषों की बड़ी निन्दा होती है! यदि वे विद्यमान होते तो जो कोई ऐसा उपहास उनका करता उसको

विना दण्ड दिए कभी भी न छोड़ते ! हां, जब इन्होंने कुछ न पाया तो इनके कर्मों ने पुजारियों को बहुत-सी मूर्ति विरोधियों से प्रसादी दिला दी और अब भी मिलती है। जब तक हम कुकर्म को न छोड़ेंगे तब तक मिलेगी। (स० प्र०)

वीतराग शान्त को देखने से वैराग्य शान्ति नहीं होती

वीतराग शान्त की मूर्ति देखने से वैराग्य और शान्ति की प्राप्ति नहीं हो सकती क्योंकि मूर्ति के जड़त्व धर्म आत्मा में आने से विचार शक्ति घट जाती है। विवेक के बिना न वैराग्य और वैराग्य के विना विज्ञान, विज्ञान के बिना शान्ति नहीं होती। और जो कुछ होता है सो उनके सङ्ग, उपदेश और उनके इतिहासादि के देखने से होता है, क्योंकि जिसका गुण व दोष न जान के उसकी मूर्तिमात्र देखने से प्रीति नहीं होती। प्रीति होने का कारण गुणगान हैं।

(स० प्र० स० ११)

पश्चाताप और प्रार्थना से पापों की निवृत्ति नहीं

पश्चाताप और प्रार्थना से पापों की निवृत्ति मानना बड़ा दोष है। इसी बात से जगत् में बहुत पाप बढ़ गये हैं। इससे पापों से भय न होकर पाप में प्रवृत्ति बहुत हो गई है। जो वेदों की सुनते तो विना भोग के पाप पुण्य की निवृत्ति न होने से पापों से डरते और धर्म में सदा प्रवृत्त रहते। जो भोग के विना निवृत्ति मानें तो ईश्वर अन्याय-कारी होता है। (स० प्र० स० ११)

ब्रह्मा से लेकर पीछे-पीछे आर्यावर्त्त में बहुत से विद्वान् हो गये हैं उनकी प्रशंसा न करके यूरोपियनों ही की स्तुति में उतर पड़ना पक्षपात और खुशामद है। (स० प्र० स० ११)

१३--सत्योपदेश महिमा

सच्चे उपदेश के अभाव में अविद्या फैल कर वैर विरोध

इस बिगाड़ के मूल महाभारत युद्ध से पूर्व एक सहस्र वर्ष से प्रवृत्त हुए थे। उस समय में ऋषि मुनि तो थे किन्तु कुछ-कुछ आलस्य, प्रमाद, ईर्ष्या, द्वेष के अंकुर उगे थे, वे बढ़ते-बढ़ते वृद्ध हो गये। जब सच्चा उपदेश न रहा तब आर्यावर्त्त में अविद्या फैल कर आपस में लड़ने झगड़ने लगे। (स० प्र० स० ११)

उत्तम उपदेशक न होने से अन्ध परम्परा चलती है

जब उत्तम-उत्तम उपदेशक होते हैं तब अच्छे प्रकार धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष सिद्ध होते हैं। और जब उपदेशक और श्रोता नहीं रहते, तब अन्ध परम्परा चलती है। फिर भी जब सत्पुरुष उत्पन्न होकर सत्योपदेश करते हैं तभी अन्ध परम्परा नष्ट होकर प्रकाश की परम्परा चलती है। (स० प्र० स० ११)

असत्योपदेश से हानि

जैसा सत्योपदेश से संसार को लाभ पहुंचता है वैसा ही असत्योपदेश से हानि होती है। अतः यही सब मनुष्यों का, विशेष विद्वान् और संन्यासियों का काम है कि सब मनुष्यों को सत्य का मण्डन और असत्य का खण्डन पढ़ा सुना के सत्योपदेश से उपकार पहुँचना चाहिए। (स० प्र० स० ११)

सर्वमान्य सत्य विषय सब में एक से हैं

जो जो सर्वमान्य सत्य विषय हैं वे तो सब में एक से हैं। झगड़ा झूठे विषयों में होता है। अथवा एक सच्चा और दूसरा झूठा हो तो

भी कुछ थोड़ा से विवाद चलता है। यदि वादी प्रतिवादी सत्य-सत्य निश्चय के लिए प्रीतिपूर्वक वाद प्रतिवाद करें तो अवश्य निश्चय हो जावे। (स० प्र० स० १३)

१४--व्यवहार-निर्देश

मुख्य आचार इन्द्रिय निग्रह

मनुष्य का यही मुख्य आचार है कि जो इन्द्रियाँ चित्त को हरण करने वाले विषयों में प्रवृत्त कराती हैं उनको रोकने का प्रयत्न करे। उनको अपने वश में करके अधर्म मार्ग से हटा के धर्म में सदा चलाया करे। (स० प्र० स० १०)

अन्यों के दोषों का त्याग व गुणों का ग्रहण करना योग्य है

हाँ! इतना तो है कि जो लोग मांस भक्षण और मद्यपान करते हैं उनके शरीर और वीर्य्यादि धातु भी दुर्गन्धादि से दूषित होते हैं इसलिए उनके सङ्ग करने से आर्यों को भी ये कुलक्षण न लग जायें यह तो ठीक है। परन्तु जब इनसे व्यवहार और गुण ग्रहण करने में कोई भी दोष या पाप नहीं है किन्तु इनके मद्यपानादि दोषों को छोड़ गुणों को ग्रहण करें तो कुछ भी हानि नहीं। (स० प्र० स० १०)

किसका व्यवहार किससे कैसा हो ?

राजपुरुष प्रजा के लिए सुमाता और सुपिता के समान और प्रजापुरुष राज सम्बन्ध में सुसन्तान के सदृश वर्त्तकर परस्पर आनन्द को बढ़ावें। मित्र, मित्र के साथ अन्य व्यवहारों के लिए आत्मा के समान

प्रीति से बर्त्तें परन्तु अधर्म के लिए नहीं। पड़ोसी के साथ ऐसा वर्ताव करें कि जैसा अपने शरीर के लिए करते हैं, वैसे ही मित्रादि के लिए भी कर्म किया करें। स्वामी सेवक के साथ ऐसा वर्त्तें कि जैसा अपने हस्तपादादि अंङ्गों की रक्षा के लिए वर्त्तते हैं। (व्य० भा०)

भोजन कहाँ करें

जहाँ पर अच्छा रमणीय सुन्दर स्थान दीखे वहाँ भोजन करना चाहिए। परन्तु आवश्यक युद्धादिकों में तो घोड़े आदि यानों पर बैठ के वा खड़े खड़े भी खाना-पीना अत्यन्त उचित है। (स० प्र० स० १०)

दया और क्षमा

यद्यपि दया और क्षमा अच्छी वस्तु है तथापि पक्षपात में फँसने से दया अदया और क्षमा अक्षमा हो जाती है। इसका प्रयोजन यह है कि किसी जीव को दुःख न देना यह बात सर्वथा सम्भव नहीं हो सकती, क्योंकि दुष्टों को दंड देना भी दया में गणनीय है। जो एक दुष्ट को दण्ड न दिया जाय तो सहस्रों मनुष्यों को दुःख प्राप्त हो। इसलिए वह दया अदया और क्षमा अक्षमा हो जाय।

(स० प्र० स० १२)

धर्म-पाप-शुभ चरित्र

धर्म तो न्यायाचरण, ब्रह्मचर्य, सत्य भाषाणादि है और असत्य भाषण अन्यथा आचरणादि पाप है और सबसे प्रीतिपूर्वक परोपकार वर्त्तना शुभ चरित्र कहाता है। (स० प्र० स० १२)

वैवाहिक जीवन में आचरण कैसा हो ?

कभी कोई किसी का अप्रियाचरण अर्थात् जिस २ व्यवहार से

एक दूसरे को कष्ट होवे सो काम न करें, जैसे कि व्यभिचार आदि।
एक-दूसरे को देखकर प्रसन्न हों एक-दूसरे की सेवा करें। पुरुष भोजन वस्त्र आभूषण और प्रियवचन आदि व्यवहारों में स्त्री को सदा प्रसन्न रखें और घर के सब कृत्य उसके अधीन करें। स्त्री भी अपने पति से प्रसन्नवदन खान-पान प्रेम भाव आदि से उसको सदा हर्षित रक्खे कि जिससे उत्तम सन्तान और सदा दोनों में आनन्द बढ़ता जाए।

(व्यवहार भानु)

व्यवहार कैसा हो ?

ऐसे धार्मिकों को सदा लाभ ही लाभ होता है और झूठों की दुर्दशा होकर दिवाले ही निकल जाते हैं। इसलिए सब मनुष्यों को अत्यन्त उचित है कि सर्वथा झूठ को छोड़कर सत्य ही से सब व्यवहार करें। जिससे धर्म, अर्थ काम, और मोक्ष को प्राप्त होकर सदा आनन्द में रहें। (व्य० भा०)

सर्वत्र सुख लाभ कैसे मिले ?

मैंने परीक्षा करके निश्चय किया है कि जो धर्मयुक्त व्यवहार में ठीक-ठीक वर्त्तता है उसको सर्वत्र सुख लाभ और जो विपरीत वर्तता है, वह सदा दुःखी होकर अपनी हानि कर लेता है। (व्य० भा०)

पुरुषार्थ क्या है ?

उद्योग का नाम 'पुरुषार्थ' और उसके चार भेद हैं। एक अप्राप्त की इच्छा। दूसरा–प्राप्त की यथोक्त रक्षा। तीसरा–रक्षित की वृद्धि और चौथा–बढ़ाये हुए पदार्थों का धर्म में खर्च करना पुरुषार्थ के भेद हैं।जो-जो न्यायधर्म से युक्त क्रिया से अप्राप्त पदार्थों की अभिलाषा करके उद्योग करना। उसी प्रकार उसकी सब ओर से रक्षा करनी

कि वह पदार्थ किसी प्रकार से नष्ट भ्रष्ट न हो जाए। उसको धर्म-युक्त व्यवहार से बढ़ाते जाना और बढ़े हुए पदार्थों को उत्तम व्यवहारों में खर्च करना ये 'चार भेद' हैं। (व्य० भा०)

सुखी गृहस्थ जीवन

कभी कोई किसी का अप्रियाचरण अर्थात् जिस २ व्यवहार से एक-दूसरे को कष्ट होवे सो काम न करें। जैसे कि व्यभिचार आदि। एक दूसरे को देखकर प्रसन्न हो एक दूसरे की सेवा करें। पुरुष भोजन, वस्त्र, आभूषण और प्रियवचन आदि व्यवहारों में स्त्री को सदा प्रसन्न रखे और घर के सब कृत्य उसके अधीन करें। स्त्री भी अपने पति से प्रसन्नवदन, खान-पान प्रेमभाव आदि से उसको सदा हर्षित रखे कि जिससे उत्तमसन्तान हो और सदा दोनों में आनन्द बढ़ता जाय। (व्य० भा०)

सदा सुखी कौन सदा दुःखी कौन ?

जो मनुष्य विद्या कम जानता हो परन्तु दुष्ट व्यवहारों को छोड़ कर धार्मिक होके, खाने-पीने बोलने-सुनने बैठने-उठने लेने-देने आदि व्यवहार सत्य से युक्त तथा योग्य करता है, वह कहीं कभी दुःख को नहीं प्राप्त होता और जो सम्पूर्ण विद्या पढ़ के···उत्तम व्यवहारों को छोड़ के दुष्ट कर्मों को करता है वह कहीं कभी सुख को प्राप्त नहीं हो सकता। (व्य० भा०)

चौका लगाकर रसोई खाना मानो पुरुषार्थ पर चौका लगाना है

सब बुद्धिमानों ने यही निश्चय किया है कि जो राजपुरुषों में युद्ध समय में भी चौका लगाकर रसोई बना के खाना अवश्य पराजय के हेतु है। क्षत्रिय लोगों का युद्ध में एक हाथ से रोटी खाते खाते,

जल पीते जाना और दूसरे हाथ से शत्रुओं का घोड़े साथी रथ आदि

पर चढ़ व पैदल हाँके मारते जाना अपना विजय करना ही आचार है और पराजित होना अनाचार है।

इसी मूढ़ता से इन लोगों ने चौका लगाते लगाते विरोध करते कराते सब स्वातन्त्र्य, आनन्द, धन, राज्य, विद्या और पुरुषार्थ पर चौका लगा कर हाथ पर हाथ धरे बैठे हैं मानो सब आर्य्यावर्त्त देश भर में चौका लगाकर सर्वथा नष्ट कर दिया। (स०प्र०स० १०)

स्व संस्कृति को त्यागना अच्छा नहीं

जब आर्य्यावर्त्त में उत्पन्न हुए हैं और इसी देश का अन्न जल खाया पिया, अब भी खाते पीते हैं, अपने माता, पिता, पितामहादि के मार्ग को छोड़ दूसरे विदेशी मतों पर अधिक झुक जाना, संस्कृत विद्या से रहित अपने को विद्वान् प्रकाशित करना, इङ्गलिश भाषा पढ़के पण्डिताभिमानी होकर झटिति एक मत चलाने में प्रवृत्त होना, मनुष्यों का स्थिर और बुद्धिकारक काम नहीं हो सकता।

(स०प्र०स० ११)

यूरोपियन लोगों का स्वदेशानुराग आदि उत्तम गुण अनुकरणीय

जो यूरोपियनों में बाल्यावस्था में विवाह न करना, लड़का लड़की को विद्या सुशिक्षा करना कराना, स्वयंवर विवाह होना, बुरे बुरे आदमियों का उपदेश नहीं होता, वे विद्वान् होकर जिस किसी के पाखण्ड में नहीं फंसते, जो कुछ करते हैं, वह सब परस्पर विचार और सभा से निश्चित करके करते हैं, अपनी स्वजाति की उन्नति के लिये तन मन धन व्यय करते हैं। आलस्य को छोड़ उद्योग किया करते हैं। देखो अपने देश के बने हुए जूते को कार्यालय और कचहरी में जाने देते हैं, इस देशी जूते को नहीं। इतने में ही समझ लेओ कि

अपने देश के बने जूतों का भी कितना मान प्रतिष्ठा करते हैं, उतना भी अन्य देशस्थ मनुष्यों का नहीं करते। देखो! कुछ सौ वर्ष से ऊपर इस देश में आये यूरोपियनों को हुए और आज तक यह लोग मोटे कपड़े आदि पहनते हैं जैसा कि स्वदेश में पहिरते थे परन्तु उन्होंने अपने देश का चाल चलन नहीं छोड़ा। और जो जिस काम पर रहता है उसको यथोचित करता है। आज्ञानुवर्ती बराबर रहते हैं। अपने देश वालों को व्यापार आदि में सहाय देते हैं, इत्यादि गुणों और अच्छे-अच्छे कर्मों से उनकी उन्नति है। (स०प्र०स० ११)

१५--सृष्टि-चर्चा

सृष्टि रचना

जैसे हल्दी, चूना और नीबू का रस दूर दूर देश से आकर आप नहीं मिलते, किसी के मिलाने से मिलते हैं। उनमें भी यथायोग्य मिलाने से रोरी होती है, अधिक न्यून वा अन्यथा करने से रोरी नहीं होती, वैसे ही प्रकृति, परमाणुओं का ज्ञान और युक्ति से परमेश्वर के मिलाये विना जड़ पदार्थ स्वयं कुछ भी कार्य्यसिद्धि के लिए विशेष पदार्थ नहीं बन सकते। इसलिए स्वभावादि से सृष्टि नहीं होती, परमेश्वर की रचना से होती है। (स० प्र० १८८)

विना कर्त्ता के कोई भी क्रिया का क्रियाजन्य पदार्थ नहीं बन सकता। 'जिन पृथिवी आदि पदार्थों में संयोग विशेष से रचना दीखती है वे अनादि कभी नहीं हो सकते। और जो संयोग से बनता है वह संयोग के पूर्व नहीं होता और वियोग के अन्त में नहीं रहता। जो तुम इसको न मानो तो कठिन से कठिन पाषाण, हीरा और फौलाद आदि तोड़, टुकड़े कर, गला वा भस्म कर देखो कि इनमें

परमाणु पृथक पृथक मिले हैं वा नहीं ? जो मिले हैं तो वे समय पाकर

अलग-अलग भी अवश्य होते हैं। (स० प्र० पृ० १८८)

जो अनादि ईश्वर जगत् का स्रष्टा न हो तो साधनों से सिद्ध होने वालों जीवों का आधार जीवनरूप जगत् शरीर और इन्द्रियों के गोलक कैसे बनते ? इसके विना जीव साधन कर सिद्ध होवे तो भी ईश्वर की जो स्वयं सनातन अनादि सिद्धि है, जिसमें अनन्त सिद्धि हैं उसके तुल्य कोई भी जीव नहीं हो सकता। क्योंकि जीव का परम अवधि तक ज्ञान बढ़े तो भी परिमित ज्ञान और सामर्थ्यवाला होता है। अनन्त ज्ञान और सामर्थ्यवाला कभी नहीं हो सकता।

(स० प्र० पृष्ठ १८८)

योगी भी सृष्टि क्रम नहीं बदल सकता

देखो कोई भी योगी आज तक ईश्वरकृत सृष्टि क्रम को बदलने हारा नहीं हुआ है, और न होगा। जैसे अनादि सिद्ध परमेश्वर ने नेत्र से देखने और कानों से सुनने का निबन्ध किया है उसको कोई भी योगी नहीं बदल सकता। (स. प्र. पृ. १८८)

सृष्टि का आदि का अन्त नहीं

जैसे दिन के पूर्व रात और रात के पूर्व दिन तथा दिन के पीछे रात और रात के पीछे दिन बराबर चला आता है इसी प्रकार सृष्टि के पूर्व प्रलय और प्रलय के पूर्व सृष्टि तथा सृष्टि के पीछे प्रलय और प्रलय के आगे सृष्टि अनादि काल से चक्र चला आता है। इसकी आदि वा अन्त नहीं।

किन्तु जैसे दिन वा रात का प्रारम्भ और अन्त देखने में आता है उसी प्रकार सृष्टि और प्रलय का आदि अन्त होता रहता है, क्योंकि जैसे परमात्मा, जीव, जगत का कारण तीन स्वरूप से अनादि हैं, वैसे जगत की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय प्रवाह से अनादि है।

जैसे नदी का प्रवाह वैसा ही दीखता है कभी सूख जाता कभी नहीं दीखता, फिर बरसात में दीखता, ऐसे व्यवहारों को प्रवाहरूप जानना चाहिए।

जैसे परमेश्वर के गुण, कर्म, स्वभाव अनादि हैं, वैसे ही उसके जगत् की उत्पत्ति, स्थिति, प्रलय करना आदि भी अनादि हैं, जैसे कभी ईश्वर के गुण, कर्म, स्वभाव का आरम्भ और अन्त नहीं इसी प्रकार उसके कर्त्तव्य कर्मों का भी आरम्भ और अन्त नहीं।

(स० प्र० पृ० १६२)

सूर्य चन्द्र आदि में मनुष्य सृष्टि

(प्रश्न) सूर्य चन्द्र और तारे क्या वस्तु हैं और उनमें मनुष्यादि सृष्टि है वा नहीं! (उत्तर) ये सब भूगोल लोक और इन में मनुष्यादि प्रजा भी रहती है, क्योंकि पृथिवी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, चन्द्र, नक्षत्र और सूर्य इनका 'वसु' नाम इसलिए है कि इन्हीं में सब पदार्थ और प्रजा वसती है और ये ही सबको वसाते हैं।

जब पृथिवी के समान सूर्य, चन्द्र और नक्षत्र वसु हैं पश्चात् उनमें इसी प्रकार प्रजा के होने में क्या सन्देह? और जैसे परमेश्वर का यह छोटा सा लोक मनुष्यादि सृष्टि से भरा हुआ है तो क्या यह सब लोक शून्य होंगे? परमेश्वर का कोई भी कार्य निष्प्रयोजन नहीं होता तो क्या इतने असंख्य लोकों में मनुष्यादि सृष्टि न हो तो सफल कभी हो सकता है? इसलिये सर्वत्र मनुष्यादि सृष्टि है।

(स० प्र० पृ० १६६)

मूर्ति पूजा प्रकरण

मूर्ति पूजा सीढ़ी नहीं, किन्तु एक बड़ी खाई है जिसमें गिरकर चकनाचूर हो जाता है। पुनः उस खाई से निकल नहीं सकता किन्तु उसी में मर जाता है।

हाँ छोटे धार्मिक विद्वानों से लेकर परम विद्वान् योगियों के संग से सद्विद्या और सत्य भाषणादि परमेश्वर की प्राप्ति की सीढ़ियाँ हैं।

मूर्ति पूजा ब्रह्म की प्राप्ति में स्थूललक्ष्यवत नहीं किन्तु धार्मिक विद्वान् और सृष्टिविद्या है। इसको बढ़ाता-बढ़ाता ब्रह्म को भी पाता है। (पृ० २७३)

सुनिये! जब अच्छी शिक्षा और विद्या को प्राप्त होगा तब सच्चे स्वामी परमात्मा को भी प्राप्त हो जायगा।

पांच सच्ची मूर्ति पूजा

प्रथम—माता मूर्तिमती पूजनीय देवता अर्थात् सन्तानों को तन, मन, धन से सेवा करके माता को खुश रखना, हिंसा अर्थात् ताड़ना कभी न करना।

दूसरा—पिता सत्कर्त्तव्य देव, उसकी भी माता के समान सेवा करनी।

तीसरा—आचार्य जो विद्या को देने वाला है उसकी तन मन धन से सेवा करनी।

चौथा—अतिथि जो विद्वान्, धार्मिक, निष्कपटी, सब की उन्नति चाहने वाला, जगत में भ्रमण करता हुआ, सत्य उपदेश से सबको सुखी करता है उसकी सेवा करें।

पाँचवां—स्त्री के लिए पति और पुरुष के लिए स्वपत्नी पूजनीय है।

ये पांच मूर्तिमान् देव जिनके संग से मनुष्य देह की उत्पत्ति, पालन, सत्य शिक्षा, विद्या और सत्योपदेश की प्राप्ति होती है। ये ही परमेश्वर को प्राप्त होने की सीढ़ियां हैं। इनकी सेवा न करके जो पाषाणादि मूर्ति पूजते हैं वे अतीव पाकर वेदविरोधि हैं।

(पृ० २७५)

पाषाणादि मूर्ति पूजा तो सर्वथा छोड़ने और मातादि मूर्तिमानों की सेवा करने में ही कल्याण है। बड़े अनर्थ की बात है कि साक्षात्

माता आदि प्रत्यक्ष सुखदायक देवों को छोड़ के अदेव पाषाणादि में

शिर मारना मूढ़ों ने इसीलिए स्वीकार किया है कि जो माता पिता आदि के सामने नैवेद्य वा भेंट पूजा धरेंगे तो वे स्वयं खा लेंगे और भेंट पूजा लेंगे तो हमारे मुख वा हाथ में कुछ न पड़ेगा। (स० प्र०)

मूर्त्तियों की तोड़फोड़

जब मुसलमान मंदिर और मूर्तियों को तोड़ते फोड़ते हुए काशी के पास आए तब पुजारियों ने उस पाषाण के लिंग को कूप में डाल और वेणीमाधव को ब्राह्मण के घर में छिपा दिया। जब काशी में काल भैरव के डर के मारे यमदूत नहीं जाते और प्रलय समय में भी काशी का नाश नहीं होने देते, तो म्लेच्छों के दूत क्यों न डराये ? और अपने राजा के मन्दिर का क्यों नाश होने दिया ? यह सब पोप माया है। (पृ० १६६)

सोमनाथ मन्दिर की प्रतिमा

(उत्तर) देखो ! सोमनाथ जो पृथिवी से ऊपर रहता था और बड़ा चमत्कार था। क्या यह भी मिथ्या बात है ?

(उत्तर) हां मिथ्या है ! सुनो ! ऊपर नीचे चुम्बक पाषाण लगा रक्खे थे। उसके आकर्षण से वह मूर्ति अधर खड़ी थी। "जब महमूद गजनवी" आकर लड़ा तब यह चमत्कार हुआ कि उसका मन्दिर तोड़ा गया और पुजारी भक्तों की दुर्दशा हो गई और लाखों फौज दश सहस्र फौज से भाग गई। जो पोप पुजारी पूजा, पुरश्चरण, स्तुति, प्रार्थना करते थे कि "हे महादेव ! इस म्लेच्छ को तू मार डाल, हमारी रक्षा कर" और वे अपने चेले राजाओं को समझाते थे, "कि आप निश्चिन्त रहिये। महादेव जी, भैरव अथवा वीरभद्र को भेज देंगे। वे सब म्लेच्छों को मार डालेंगे वा अन्धा कर देंगे। अभी हमारा देवता प्रसिद्ध होता है। हनुमान, दुर्गा और भैरव ने स्वप्न दिया है कि हम

सब काम सिद्ध कर देंगे," वे बिचारे भोले राजा क्षत्रिय पोपों के बहकाने में विश्वास में रहे। कितने ही ज्योतिषी पोपों ने कहा कि अभी तुम्हारी चढ़ाई का मुहूर्त्त नहीं है। एक ने आठवाँ चन्द्रमा बतलाया। दूसरे ने योगिनी सामने दिखलाई, इत्यादि बहकावट में रहे। जब म्लेच्छों की फौज ने आकर घेर लिया तब दुर्दशा से भागे, कितने ही पोप पुजारी और उनके चेले पकड़े गये। पुजारियों ने यह भी हाथ जोड़ कहा कि तीन करोड़ रुपया ले लो मन्दिर और मूर्ति मत तोड़ो। मुसलमानों ने कहा कि हम, "बुतपरस्त" नहीं किन्तु "बुतशिकन" अर्थात् बुतों के तोड़ने वाले मूर्तिभंजक हैं। जा के झट मन्दिर तोड़ दिया। जब ऊपर की छत टूटी तब चुम्बक पाषाण पृथक् होने से मूर्त्ति गिर पड़ी। जब मूर्त्ति तोड़ी तब सुनते हैं कि अठारह क्रोड़ के रत्न निकले। जब पुजारी और पोपों पर कोड़ा पड़े तब रोने लगे, कहा कि कोष बतलाओ। मार के मारे झट बतला दिया। तब सब कोष लूट, मार कूट कर पोप और उनके चेलों को "गुलाम" बिगारी बना, पिसना पिसवाया, घास खुदवाया, मलमूत्रादि उठवाया और चना खाने को दिये।

हाय! कैसे पत्थर की पूजा कर सत्यानाश को प्राप्त हुए। क्यों परमेश्वर की भक्ति न की? जो म्लेच्छों के दांत तोड़ डालते! और अपनी विजय करते। (स० प्र० स० ११)

देवी आदि की मूर्त्ति

क्योंकि "अज एकपात्", "अकायम्" इत्यादि विशेषणों से परमेश्वर को जन्म मरण और शरीरधारणारहित वेदों में कहा है तथा युक्ति से भी परमेश्वर का अवतार कभी नहीं हो सकता। क्योंकि जो आकाशवत् सर्वत्र व्यापक अनन्त और सुख दुख दृश्यादि गुणरहित है वह एक छोटे से वीर्य, गर्भाशय और शरीर में क्योंकर आ सकता है? आता जाता वह है कि जो एकदेशीय हो और जो अचल,

अदृश्य, जिसके विना एक परमाणु भी खाली नहीं है उसका अवतार कहना जानो वन्ध्या के पुत्र का विवाह कर उसके पौत्र के दर्शन की बात कहता है। (स० प्र० स० ११)

शास्त्रों में भी मूर्ति पूजा और तीर्थ नहीं

देखो, जैमिनी ने मीमांसा में सब कर्मकाण्ड पतञ्जलि मुनि ने योगशास्त्र में सब उपासना काण्ड और व्यास मुनि ने शारीरिक सूत्रों में सब ज्ञानकाण्ड वेदानूकूल लिखा है उनमें पाषाणादि मूर्तिपूजा वा प्रयागादि तीर्थों का नाम निशान भी नहीं लिखा। लिखे कहां से ? जो कहीं वेदों में होता तो लिखे विना कभी नहीं छोड़ते।

(स० प्र० स० ११)

मूर्त्ति पूजा से महापुरुषों की निन्दा

देखो ! मूर्तिपूजा से श्री रामचन्द्र, श्री कृष्ण, नारायण और शिव आदि की बड़ी निंदा और उपहास होता है। सब कोई जानते हैं कि वड़े महाराजाधिराज और उनकी स्त्री सीता तथा रुक्मिणी, लक्ष्मी और पार्वती आदि महारानियां थीं, परन्तु जब उनकी मूर्तियां मन्दिर आदि में रख के पुजारी लोग उनके नाम से मांगते हैं अर्थात् उनको भिखारी बनाते हैं कि आओ महाराज ! महाराजा जी ! सेठ साहूकारों ! दर्शन कीजिए, बैठिये, चरणामृत लीजिये, कुछ भेंट चढ़ाइये, महाराज ! सीताराम, कृष्ण रुक्मिणी वा राधाकृष्ण, लक्ष्मी नारायण और महादेव पार्वती जी को तीन रोज से बालभोग व राज भोग अर्थात् जलपान वा खानदान भी नहीं मिला है। आज इनके पास कुछ भी नहीं है। सीता आदि की नथुनी आदि राणीजी वा सेठानी जी बनवा दीजिए, अन्न आदि भेजो तो रामकृष्ण आदि को भोग लगावें। वस्त्र सब फट गए हैं, मन्दिर के सब कोने गिर पड़े हैं। ऊपर से चूता है और दुष्ट चोर जो कुछ था उसे उठा ले

गये।.....रामलीला और रासमंडल भी करवाते हैं, सीताराम राधाकृष्ण नाच रहे हैं राजा और महन्त आदि उनके सेवक आनन्द में बैठे हैं! मन्दिर में सीतारामादि खड़े और पुजारी वा महन्त जी आसन अथवा गद्दी पर तकिया लगाये बैठते हैं।......(स० प्र० स० ११)

मूर्ति पूजा कबसे

यह मूर्तिपूजा अढ़ाई तीन सहस्र वर्ष के इधर उधर वाममार्गी और जैनियों से चली है। प्रथम आर्यावर्त में नहीं थी। और ये तीर्थ भी नहीं थे। जब जैनियों ने गिरनार, पालिटाना, शिखर, शत्रुंजय और आबू आदि तीर्थ बनाये उनके अनुकूल इन लोगों ने भी बना लिये। जो कोई इनके आरम्भ की परीक्षा करना चाहें वे पण्डों की पुरानी से पुरानी बही और तांबे के पत्र आदि लेख देखें, तो निश्चय हो जायगा कि ये सब तीर्थ पांच सौ अथवा एक सहस्र वर्ष से इधर ही बने हैं। सहस्र वर्ष के उधर का लेख किसी के पास नहीं निकलता, इससे आधुनिक है। (स० प्र० पृ० २८५ स० ११)

१६--कुछ अन्य सूक्तियाँ

मेरा मन्तव्य कोई नया मत चलाना नहीं

मैं अपना मन्तव्य उसी को जानता हूं कि जो तीन काल में सबको एक-सा मानने योग्य है। मेरा कोई नवीन कल्पना वा मतमतान्तर चलाने का लेशमात्र भी अभिप्राय नहीं है किन्तु जो सत्य है उसको मानना मनवाना और जो असत्य है उसको छोड़ना और छुड़ाना मुझको अभीष्ट है। यदि मैं पक्षपात करता तो आर्यावर्त्त में प्रचलित मतों में से किसी एक मत का आग्रही होता किन्तु जो जो आर्यावर्त्त वा

अन्य देशों में अधर्मयुक्त चालचलन हैं उसका स्वीकार और जो धर्मयुक्त बातें हैं उनका त्याग नहीं करता और न करना चाहता हूँ क्योंकि ऐसा करना मनुष्यधर्म से वहिः है। (स्व० मं० मं०)

वेदों का रचयिता ईश्वर कैसे ?

कितने ही पुरुष ऐसा प्रश्न करते हैं कि ईश्वर निराकार है, उससे शब्द रूप वेद कैसे उत्पन्न हो सकते हैं ? इसका यह उत्तर है कि परमेश्वर सर्वशक्तिमान् है, उसमें ऐसी शंका करनी सर्वथा व्यर्थ है, क्योंकि मुख और प्राणादि साधनों के काम करने का अनन्त सामर्थ्य है, कि मुख के विना प्राणादि का काम वह अपने सामर्थ्य से यथावत् कर सकता है। यह दोष तो हम जीव लोगों में आ सकता है कि मुखादि के बिना मुख का कार्य नहीं कर सकते हैं, क्योंकि हम लोग अल्प सामर्थ्य वाले हैं और इसमें दृष्टान्त भी है, कि मन के मुखादि अवयय नहीं हैं, तथापि जैसे उसके भीतर प्रश्नोत्तर आदि शब्दों का उच्चारण मानस व्यापार में होता है, वैसे परमेश्वर को भी जानना चाहिए। (ऋ० भा० वेदो०)

योगी और भोगी में अन्तर

उपासक योगी और संसारी मनुष्य जब व्यवहार में प्रवृत्त होते हैं, तब योगी की वृत्ति तो सदा हर्ष शोक रहित आनन्द से प्रकाशित होकर सदा उत्साह और आनन्द युक्त ही बनी रहती है और संसारी पुरुप की वृत्ति सदा हर्ष, शोक रूप दुःखसागर में ही डूबी रहती है। उपासक योगी की वृत्ति तो सदा ज्ञान के प्रकाश में ही बढ़ती जाती है, और संसारी पुरुष की वृत्ति सदा अन्धकार में ही डूबी रहती है। (उपदेश मंजरी)

अनाथ कौन ?

अनाथ उसको कहते हैं जिनका सामर्थ्य अपने पालन करने का भी न हो, जैसे कि वालक, वृद्ध, रोगी अंग-भंग आदि हैं। (व्य० भा०)

शरीर धारण

जब पाप बढ़ जाता पुण्य न्यून होता है तव मनुष्य का जीव

पश्वादि नीच और जब धर्म अधिक तथा अधर्म न्यून होता हैं तब देव अर्थात् विद्वानों का शरीर मिलता और जब पुण्य पाप बराबर होता है तब साधारण मनुष्य का जन्म होता है। (स० प्र० स० ९)

धर्म के तीन स्कन्ध

धर्म के तीन स्कन्ध हैं एक विद्या का अध्ययन, दूसरा यज्ञ अर्थात् उत्तम क्रियाओं का करना, तीसरा दान अर्थात् विद्यादि उत्तम गुणों का देना तथा प्रथम तप अर्थात् वेदोक्त धर्म के अनुष्ठानपूर्वक विद्या पढ़ाना, दूसरा आचार्य कुल में वस के विद्या पढ़ना और तीसरा परमेश्वर का ठीक-ठीक विचार करके सदा विद्याओं को जान लेना।

(—ऋ० भा० वान०)

तीन शरीर

तीन शरीर हैं, एक "स्थूल" जो यह दीखता है। दूसरा पांच प्राण, पाँच ज्ञानेन्द्रिय, पांच सूक्ष्मभूत और मन तथा बुद्धि इन सत्रह तत्वों का समुदाय "सूक्ष्म शरीर" कहाता है, यह 'सूक्ष्म शरीर' जन्म मरणादि में भी जीव के साथ रहता है। दूसरा स्वाभाविक जो जीव के स्वाभाविक गुण रूप हैं। यह दूसरा अभौतिक शरीर मुक्ति में भी रहता है। इसी से जीव मुक्ति में सुख को भोगता है। तीसरा कारण जिसमें सुषुप्ति अर्थात् गाढ़ निद्रा होती है, वह प्रकृति रूप होने से सर्वत्र विभु और सब जीवों के लिए एक है। चौथातुरीय शरीर वह कहाता है, जिसमें समाधि से परमात्मा के आनन्द स्वरूप में मग्न जीव होते हैं। (स मं० मं० ९)

शिक्षा

जिसमें विद्या, सभ्यता, धर्मात्मा, जितेन्द्रियतादि की बढ़ती होवे और अविद्यादि दोष छूटें उसको शिक्षा कहते हैं। (स्व० म० म०)

तीर्थ

जिससे दुःखसागर से पार उतरें कि जो सत्यभाषण, विद्या, सत्संग यमादि योगाभ्यास, पुरुषार्थ विद्यादानादि शुभ कर्म हैं उनको "तीर्थ" कहते हैं। जल स्थल आदि तीर्थ नहीं हैं। (स्व मं० मं०)

सत्यार्थ प्रकाश लिखने का अभिप्राय

(१)

जो जो विद्या और धर्म प्राप्ति के कर्म हैं वे प्रथम करने में विष के तुल्य और पश्चात् अमृत के सदृश होते हैं। ऐसी बातों को चित्त में धर के मैंने इस ग्रन्थ (सत्यार्थ प्रकाश) को रचा है। श्रोता व पाठकगण भी प्रथम प्रेम से देख के इस ग्रन्थ का सत्य-सत्य तात्पर्य जानकर यथेष्ट करें। उसमें यह अभिप्राय रक्खा गया है कि जो जो सब मतों में सत्य बातें हैं वे वे सब में अविरुद्ध होने से उनको स्वीकार करके, जो जो मत मतान्तरों में मिथ्या बातें हैं उन उनका खण्डन किया है। इसमें यह भी अभिप्राय रक्खा है कि सब मत-मतान्तरों की गुप्त वा प्रकट बुरी बातों का प्रकाश कर विद्वान् अविद्वान्, सब साधारण मनुष्यों के सामने रक्खा है, जिससे सबसे सबका विचार होकर परस्पर प्रेमी होके एक सत्यमतस्थ होवें।

(२)

यद्यपि इस ग्रन्थ को देखकर अविद्वान् लोग अन्यथा ही विचारेंगे तथा बुद्धिमान् लोग यथायोग्य इसका अभिप्राय समझेंगे, इसलिए मैं अपने परिश्रम को सफल समझता और अपना अभिप्राय सब सज्जनों के सामने धरता हूं। उसको देख दिखलाके मेरे श्रम को सफल करें। और इसी प्रकार पक्षपात न करके सत्यार्थ का प्रकाश करना मेरा वा सब महाशयों का मुख्य कर्त्तव्य काम है। (स० प्र० भूमिका)

पाँच सहस्र वर्षों के पूर्व...

यह सिद्ध बात है कि पांच सहस्र वर्षों के पूर्व वेदमत से भिन्न दूसरा कोई भी मत न था, क्योंकि वेदोक्त सब बातें विद्या से अवि-

रुद्ध हैं। वेदों की अप्रवृत्ति होने के कारण महाभारत युद्ध हुआ। इनकी अप्रवृत्ति से अविद्यान्धकार के भूगोल में विस्तृत होने से,

मनुष्यों की बुद्धि भ्रमयुक्त होकर जिसके मन में जैसा आया वैसा मत चलाया। (स०प्र० एकादश समुल्लास की भूमिका)

अन्योऽन्य को आनन्द कब ?

जब तक इस मनुष्य जाति में परस्पर मिथ्या मतमतान्तर का विरुद्धवाद न छूटेगा तब तक अन्योऽन्य को आनन्द न होगा। यदि हम सब मनुष्य और विशेष विद्वज्जन ईर्ष्या द्वेष छोड़, सत्यासत्य का निर्णय करके, सत्य का ग्रहण और असत्य का त्याग कराना चाहें तो हमारे लिये यह बात असाध्य नहीं है। यह निश्चय है कि इन विद्वानों के विरोध ही ने सबको विरोध जाल में फँसा रक्खा है। यदि ये लोग अपने प्रयोजन में न फँसकर सबके प्रयोजन को सिद्ध करना चाहें तो अभी ऐक्यमत हो जायें।

(स० प्र० एकादश समुल्लास की भूमिका)

मनुष्य आत्मा सत्यासत्य के निर्णय में समर्थ

सब मनुष्यों को उचित है कि सबके मत विषयक पुस्तकों को देख समझ कर कुछ सम्मति वा असम्मति देवें वा लिखें, नहीं तो सुना करें। क्योंकि जैसे पढ़ने से पंडित होता है, वैसे सुनने से बहुश्रुत होता है। यदि श्रोता दूसरे को नहीं समझा सके तथापि आप स्वयं तो समझ ही जाता है। जो कोई पक्षपातरूप यानारूढ़ होके देखते हैं उनको न अपने और न पराये गुण दोष विदित हो सकते हैं। मनुष्य का आत्मा यथायोग्य सत्यासत्य के निर्णय करने का सामर्थ्य रखता है। जितना अपना पठित व श्रुत है उतना निश्चय कर सकता है।

(स० प्र० त्रयोदश समुल्लास अनुभूमिका [२])

यही सज्जनों की रीति है कि अपने वा पराये दोषों को दोष और गुणों को गुण जानकर गुणों को ग्रहण और दोषों को त्याग करें, और हठियों का हठ दुराग्रह न्यून करें करावें। क्योंकि पक्षपात से क्या क्या अनर्थ जगत् में न हुए और न होते हैं। सच तो यह है कि इस अनिश्चित क्षण भंग जीवन में पराई हानि करके लाभ से स्वयं रिक्त रहना और अन्य को रखना मनुष्यपन से बहिः है।

(स० प्र० अनुभूमिका [४] चतुर्दश समुल्लास)

भूगोल एवं विज्ञान

आर्यावर्त की परिभाषा

उत्तर में हिमालय, दक्षिण में विन्ध्याचल, पूर्व और पश्चिम में समुद्र ॥१॥ तथा सरस्वती पश्चिम में अटक नदी, पूर्व में दृषद्वती जो नेपाल के पूर्व भाग पहाड़ से निकल के बंगाल के, आसाम के पूर्व और पश्चिम ओर होकर दक्षिण के समुद्र में मिली है जिसको ब्रह्म-पुत्र कहते हैं और जो उत्तर के पहाड़ों से निकल के दक्षिण के समुद्र की खाड़ी से आकर मिली है। हिमालय की मध्यरेखा से दक्षिण और पहाड़ों के भीतर और रामेश्वर पर्यन्त विन्ध्याचल के भीतर जितने देश हैं उन सबको आर्यावर्त इसलिए कहते हैं कि यह आर्यावर्त्त देव अर्थात् विद्वानों ने बसाया और आर्यजनों के निवास करने से आर्यावर्त्त कहाया है। (स० प्र० अष्टम समुल्लास)

आर्य ही आर्यावर्त्त के आदि निवासी

प्रथम इस देश का नाम क्या था और इसमें (आर्यावर्त्त में) कौन

बसते थे ? इसके पूर्व इस देश का नाम कोई भी नहीं था और न

कोई आर्यों के पूर्व इस देश में वसते थे। क्योंकि आर्य लोग सृष्टि के आदि में कुछ काल के पश्चात् तिव्वत से सूधे इसी देश में आकर बसे थे। (स० प्र० अष्टम समुल्लास)

दस्यु देश और म्लेच्छ देश

जो आर्यावर्त्त देश से भिन्न देश हैं वे दस्युदेश और म्लेच्छ देश कहाते हैं।। इससे भी यह सिद्ध होता है कि आर्यावर्त्त से भिन्न पूर्व दिशा से लेकर उत्तर वायव्य और पश्चिम दिशाओं में रहने वालों का नाम दस्यु और म्लेच्छ तथा असुर है। और नैर्ऋत्य दक्षिण तथा आग्नेय दिशाओं में आर्यावर्त्त देश से भिन्न में रहने वाले मनुष्यों का नाम राक्षस था। अब भी देख लो हव्शी लोगों का स्वरूप भयंकर जैसा राक्षसों का वर्णन किया है वैसा ही दीख पड़ता है।

(स० प्र० अष्टम समुल्लास)

नाग और पाताल देश

आर्यावर्त्त की सूध पर नीचे रहने वालों का नाम नाग और उस देश का नाम पाताल इसलिये कहते हैं कि वह देश आर्यावर्त्तीय मनुष्यों के वाद अर्थात् पग के तले हैं। और उनके नागवंशी अर्थात् नाग नाम वाले पुरुष के वंश के राजा होते थे, उसी की उलोपी राजकन्या से अर्जुन का विवाह हुआ था। अर्थात् इक्ष्वाकु से लेकर कौरव पांडव तक सर्व भूगोल में आर्यों का राज्य और वेदों का थोड़ा थोड़ा प्रचार आर्यावर्त्त से भिन्न देशों में भी रहता था इसमें यह प्रमाण है कि ब्रह्मा का पुत्र विराट्, विराट् के मनु, मनु के मरीच्यादि दश, उनके स्वायंभुवादि सात राजा और उनके सन्तान इक्ष्वाकु आदि राजा जो आर्यावर्त के प्रथम राजा हुए, जिन्होंने यह आर्यावर्त्त बसाया है। (स० प्र० अष्टम समुल्लास)

सूर्योदय कब कहां ?

रात और दिन सर्वदा वर्त्तमान रहते हैं, क्योंकि पृथिव्यादि लोक घूमकर जितना भाग सूर्य के सामने आता है उतने में दिन और जितना पृष्ठ में अर्थात् आड़ में होता जाता है, उतने में रात। अर्थात् उदय, अस्त, संध्या, मध्याह्न, मध्यरात्रि आदि जितने कालावयव हैं, वे देश देशान्तरों में सदा वर्त्तमान रहते हैं। अर्थात् जब आर्यावर्त्त में सूर्योदय होता है, उस समय पाताल अर्थात् 'अमेरिका' में अस्त होता है। जब आर्यावर्त्त में अस्त होता है, तब पाताल देश में उदय होता है। जब आर्यावर्त्त में मध्य दिन वा मध्य रात्रि है, उसी समय पाताल देश में मध्य रात और मध्य दिन रहता है।

(स० प्र० अष्टम समुल्लास)

दिन और रात

जो लोग कहते हैं कि सूर्य घूमता और पृथिवी नहीं घूमती वे सब अज्ञ हैं, क्योंकि जो ऐसा होता तो कई सहस्र वर्ष के दिन और रात होते, अर्थात् सूर्य का नाम (ब्रध्न:) पृथिवी से लाखों गुना बड़ा और करोड़ों कोश दूर है। जैसे राई के सामने पहाड़ घूमे तो बहुत देर लगती और राई के घूमने में बहुत समय नहीं लगता वैसे ही पृथिवी के घूमने से यथायोग्य दिन रात होता है, सूर्य के घूमने से नहीं। और जो सूर्य को स्थिर कहते हैं वे भी ज्योतिर्विद्यावित् नहीं, क्योंकि यदि सूर्य न घूमता होता तो एक राशि स्थान से दूसरी राशि अर्थात् स्थान को प्राप्त न होता।

(स० प्र० अष्टम समुल्लास)

सृष्टि अन्य लोकों में भी

पृथिवी, द्यौ, अग्नि, वायु, अन्तरिक्ष, चन्द्र, नक्षत्र और सूर्य

इनका वसु नाम इसलिये है कि इन्हीं में सब पदार्थ और प्रजा वसती

है और ये ही सब को वसाते हैं। जिस लिये वास के निवास करने के घर हैं इसलिये इनका नाम वसु है। जब पृथिवी के समान सूर्य, चन्द्र और नक्षत्र वसु हैं पश्चात् इनमें इसी प्रकार प्रजा के होने में क्या सन्देह ? और जैसे परमेश्वर का यह छोटा सा लोक मनुष्यादि सृष्टि से भरा हुआ है तो क्या यह सब लोक शून्य होंगे ? परमेश्वर का कोई भी काम निष्प्रयोजन नहीं होता तो क्या इतने असंख्य लोकों में मनुष्यादि सृष्टि न हो तो सफल कभी हो सकता है ? इसलिए सर्वत्र मनुष्यादि सृष्टि है। (स० प्र० अष्टम समुल्लास)

सत्यार्थ प्रकाश प्रथम संस्करण (१८७५ ई० में मुद्रित) के उद्धरण

१. समुल्लास–२ पृष्ठ ३३

"छल कपट और कृतघ्न तो उसको कहते हैं कि हृदय में तो और बात, बाहर और बात कृतघ्नता नाम कोई उपकार करे उस उपकार को न मानना कृतघ्नता कहाती है।

२. समुल्लास–३ पृष्ठ ३७

"तत्" यह द्वितीया का एक वचन है।
"सवितुः" षष्ठी का एक वचन है।
"वरेण्यं" द्वितीया का एक वचन है।
"भर्गः" द्वितीया का एक वचन है।
"देवस्य" षष्ठी का एक वचन है।
"धीमहि" क्रिया पद है।

"धियः" द्वितीया का बहुवचन है ।

"यः" प्रथमा का एक वचन है ।

"नः" षष्ठी का बहुवचन है ।

"प्रचोदयात्" क्रिया पद है ।

३. समुल्लास–२ पृष्ठ ३१

पाल्य पालक सम्बन्ध—जब तक ब्रह्मचर्य्य की पूर्ति और विवाह का समय न होय तब तक उन बालकों की माता पितादिक सर्वथा रक्षा करें ।

४. समुल्लास–३ पृष्ठ ३६

आचमन—अंगुष्ठ के मूल के नीचे तल नाम हथेली का जो मध्य है उसका नाम ब्राह्म तीर्थ है, कनिष्ठिका के मूल में जो रेखा है उसका नाम प्राजापत्य तीर्थ है, अंगुलियों का जो अग्रभाग है उसका नाम देवतीर्थ है, तर्जनी और अंगुष्ठ इन दोनों के मूल जो बीच है उसका नाम पितृ तीर्थ है । आचमन समय में ब्राह्म तीर्थ से आचमन करे ।

५. समुल्लास–३ पृष्ठ ३८

प्राणायाम का प्रकार—मूलेन्द्रिय से लेके धैर्य से अपान वायु को नाभि में ले आना, नाभि से अपान को और समान को हृदय में ले आना, हृदय में दोनों वे और तीसरा प्राण इन तीनों को बल से नासिका द्वार से बाहर आकाश में फेंक देना अर्थात् जो वायु कुछ नासिका से निकलता है और भीतर आता है उन सब का नाम प्राण है । उसका मूलेन्द्रिय नाभि और उदर को ऊपर उठा ले तब तक वायु न निकाले पीछे हृदय में इकट्ठा करके जैसे कि वमन में अन्न बाहर फेंका जाता है वैसे सब भीतर के

वायु को बाहर फेंक दे फिर उसको ग्रहण न करे जितना सामर्थ्य होय तब तक बाहर की वायु को रोक रक्खे जब चित्त में कुछ क्लेश होय तब बाहर से वायु को धीरे धीरे भीतर ले जाय फिर उसको वैसा ही वारम्बार २० वार भी करेगा उसका प्राणवायु स्थिर हो जायेगा और उसके साथ चित्त भी स्थिर होगा बुद्धि और ज्ञान बढ़ेगा बुद्धि इस प्रकार की तीव्र होगी कि बहुत कठिन विषय को भी शीघ्र जान लेगी शरीर में भी बल पराक्रम होगा और वीर्य भी स्थिर होगा तथा जितेन्द्रियता होगी सब शास्त्रों को बहुत थोड़े काल में पढ़ लेगा ।

६. समुल्लास–३ पृष्ठ ४५

चार प्रकार के पदार्थ होम के लिखे हैं:—एक तो जिसमें सुगन्ध गुण होय जैसे कि कस्तूरी केशरादिक और दूसरा जिसमें मिष्ट गुण होय जैसे कि मिथो शर्करादिक और तीसरा जिसमें पुष्टिकारक गुण होय जैसा कि दूध घी…और चौथा जिसमें रोग निवृत्तिकारक गुण होय जैसा कि वैद्यक शास्त्र की रीति से सोमलतादिक औषधियां लिखी हैं ।

७. समुल्लास–३ पृष्ठ ५१

विवाह योग्य आयु तथा अनिवार्य शिक्षा :—१६ वर्ष से न्यून कन्या का विवाह कभी न करना चाहिये और २५ वर्ष से न्यून पुरुषों का भी न करना चाहिये और जो कोई इसबात का व्यतिक्रम करे कि १६ वर्ष से पहिले कन्याओं का विवाह करे और २५ वर्ष से पहिले पुत्रों का विवाह करे उसको राजा दण्ड दे उनके माता पिता को भी और जो कोई अपने सन्तानों को पाठशाला में पढ़ने के लिये न भेजे उसको भी राजा दण्ड देवे ।

८. समुल्लास–३ पृष्ठ ५४

दरिद्र के द्वारा भी दान दिया जाना चाहिए :—दरिद्र होवे तो भी दान की इच्छा न छोड़नी चाहिये।

९. समुल्लास–३ पृष्ठ ५४

दान सुपात्रों को ही:—श्रेष्ठ सुपात्रों को देना चाहिये कुपात्रों को कभी नहीं।

१०. समुल्लास–३ पृष्ठ ५६

अत्यन्त कामात्मता एवं अकामता को श्रेष्ठ विषवत् समझें:—मनुष्यों को विषयों में जो कामात्मता नाम अत्यन्त कामना सो श्रेष्ठ नहीं और अकामता नाम कोई पदार्थ की इच्छा भी न करनी वह भी श्रेष्ठ नहीं क्योंकि विद्या को जो होना सो इच्छा ही से है धर्म विद्या और परमेश्वर की उपासना की तो कामना अवश्य ही करना चाहिये।

११. समुल्लास–३ पृष्ठ ६०

विद्या के प्रचार में आर्यावर्त्त की उन्नति:—आर्यावर्त्त देश की उन्नति तभी होगी जब विद्या का यथावत् प्रचार होगा।

१२. समुल्लास–३ पृष्ठ ६०

आप्त:—सब जीवों के कल्याण की इच्छा जिसको होय उसको "आप्त" कहते हैं।

१३. समुल्लास–३ पृष्ठ ७५

चार प्रमाण:—प्रत्यक्ष अनुमान उपमान (अर्थापत्ति सम्भव

अभावे) शब्द (ऐतिह्य) चार ही प्रमाण मानना ठीक हैं यह गौतम

मुनि का अभिप्राय है।

१४. समुल्लास–३ पृष्ठ ८५

पदार्थों के अनुकूल गुणों को और विरुद्ध गुणों को जानने से पृथ्वीयान जलयान और आकाश यानादिक पदार्थों को रच लेगा जैसे कि महाभारत में उपरिचर वसु राजा इन्द्रादिक देव तथा राम लङ्का से अयोध्या को आकाश मार्ग से आया उपरिचरादिक राजा लोग और इन्द्रादिक देव वे भी आकाश मार्ग से जाते और आते थे जैसे कि आजकल अंगरेज लोगों ने रेल तारादिक वहुत से पदार्थ रचे हैं वे सब शिल्प शास्त्र के विषय हैं और उनसे बहुत से उपकार हैं।

१५. समुल्लास–३ पृष्ठ ९१

युक्तिपूर्वक विद्या और वल से ही वीर्य की रक्षा करनी चाहिये अन्यथा वीर्य की रक्षा कभी न होगी तब विद्या भी न होगी जब विद्या न होगी तब कुछ भी सुख न होगा उसका मनुष्य शरीर धारण करना ही पशुवत् हो जायेगा।

१६. समुल्लास–४ पृष्ठ १०१

स्त्री के शरीर से पुरुष का शरीर लम्बा होना चाहिये हाथ के कन्धे तक स्त्री का सिर आवे उससे अधिक स्त्री का शरीर न होना चाहिये न्यून होय तो होय अन्यथा गर्भ स्थिर न रहेगा और वंशच्छेद भी हो जाये तो आश्चर्य नहीं।

१७. समुल्लास–४ पृष्ठ ११०

एक व्यभिचारिणी स्त्री अथवा वेश्या वे बहुत पुरुषों को वीर्य के

नाश से निर्बल कर देती है इससे एक पुरुष के लिये एक स्त्री क्या थोड़ी है अर्थात् बहुत है एक स्त्री के साथ भी सर्वथा वीर्य का नाश करना उचित नहीं क्योंकि वीर्य के नाश से पूर्वोक्त सब दोष हो जायेंगे इससे विवाहिता उसके साथ भी वीर्य का नाश बहुत न करना चाहिये केवल सन्तान के लिये वीर्य का दान करना चाहिये अन्यथा नहीं।

१८. समुल्लास–४ पृष्ठ १२६

एक प्रहर रात रहे तब सब मनुष्य उठें उठके प्रथम धर्म का विचार करें।

१६. समुल्लास–४ पृष्ठ १२७-१२८

जब चार या पाँच घड़ी दिन रहे तब सब कार्यों को छोड़ के भोजन के लिये जावे पहिले शौच स्नानादिक क्रिया करे तदनन्तर बलिवैश्वदेव फिर अतिथि सेवा करके भोजन करे, भोजन करके फिर भी सन्ध्योपासन के वास्ते एकान्त में चला जाय सन्ध्योपासन करके फिर अपने अग्निहोत्र स्थान में आके अग्निहोत्र करे जब जब अग्निहोत्र करे तब तब स्त्री के साथ ही करे।

२०. समुल्लास–४ पृष्ठ १२८

निदान एक प्रहर रात तक व्यवहार करे फिर सोवे दो प्रहर अथवा डेढ़ प्रहर तक फिर उठ के वैसे ही नित्य क्रिया करे सो मध्य रात्रि के मध्य दो प्रहर में जब जब वीर्यदान कर उसके पीछे कुछ ठहर के दोनों स्नान करें पीछे शय्या में पृथक पृथक जाके सोवें जो स्नान न करेंगे तो उनके शरीर में रोग ही हो जायेंगे क्योंकि उससे बड़ी उष्णता होती है इसलिये स्नान करने से वह विकार न होगा और वीर्य तेज भी बढ़ेगा।

२१. समुल्लास–४ पृष्ठ १२६

रात्रि और दिवस के संयोग में संध्या करे जब जीवात्मा बाहर व्यवहार करने को चाहता है तब बहिर्मुख होता है मन और इन्द्रियों को भी बहिर्मुख करता है और जीव भी नेत्र ललाट और श्रोत्र के ऊपर के अंगों में विहार कर्त्ता है जैसे कि सूर्य उदय होकर ऊपर २ विहार कर्त्ता है वैसे जीव भी जब सोना चाहता है तब हृदय पर्यन्त नीचे के अङ्गों में चला जाता है रात्रि की नांई अंधकार हो जाता है बिना अपने स्वरूप के किसी पदार्थ को नहीं देखता जैसे कि सूर्य अस्त हो जाता है तब अंधकार होने से कुछ नहीं देख पड़ता है ऐसे ही जीव ऊपर आने और नीचे जाने का व्यवहार उसका संधान दोनों संध्या काल में करें इसके संधान करने से परमेश्वर पर्यन्त का कालान्तर में मनुष्यों को बोध हो जाता है और जीव का कभी नाश नहीं होता इसका नाम आदित्य है इस श्रुति का अर्थ हो गया अर्थात्:—

उद्यन्तमस्तंयान्तमादित्यमभिध्यायन् ब्राह्मणः सकलं भद्रमश्नुते ॥

२२. समुल्लास–४ पृष्ठ १२६

जो प्रातः और सायंकाल की संध्या नहीं करता उसको श्रेष्ठ द्विज लोग सब द्विज कर्माधिकारों से निकाल देवें अर्थात् यज्ञोपवीत को तोड़के शूद्र कुल में कर देवें वह केवल सेवा ही करे जो कि शूद्र का कर्म है।

२३. समुल्लास–२ पृष्ठ २८

इतनी शिक्षा बालकों को पाँच वर्ष तक करना चाहिये उसके पीछे माता पिता अक्षर लिखने की और पढ़ने की शिक्षा करें देवनागराक्षर और अन्य देशों के भाषाक्षरों का लिखने पढ़ने का अभ्यास ठीक २ करावें।

२४. समुल्लास / २ पृष्ठ ८२

योगाभ्यास से उपासना काण्ड जो कि चित्तवृत्ति के निरोध से ले के कैवल्यपर्यन्त उपासना काण्ड कहाता है।

२५. समुल्लास–३ पृष्ठ ९०-९१

जब सोलह वर्ष का पुरुष होय तबसे ले के जब तक वृद्धावस्था न आवे तब तक ४० बैठक करें और ४० वा ३० दण्ड करें कुछ भीत खम्भे वा पुरुष से बल करें फिर लौट करें उसको भोजन से एक घन्टा पीछे करें परन्तु दूध जो पीना होय अभ्यास के पीछे शीघ्र ही पीवें उससे शरीर में रोग न होगा जो कुछ खाया वा पीया सो सब परिपक्व हो जायेगा सब धातुओं की वृद्धि होती है तथा वीर्य्य की भी अत्यन्त वृद्धि होती है शरीर दृढ़ हो जाता है और हड्डियाँ बड़ी तुष्ट हो जाती हैं जठराग्नि शुद्ध प्रदीप्त रहता है सन्धि से सन्धि हाड़ों की मिली रहती है अर्थात् सब अङ्ग सुन्दर रहते हैं परन्तु अधिक न करना अधिक के करने से उतने गुण न होंगे क्योंकि सब धातु शुष्क और रूक्ष हो जाते हैं उससे बुद्धि भी वैसी ही रूक्ष हो जाती है और क्रोधादिक भी बढ़ते हैं इससे अधिक न करना चाहिये यह बात सुश्रुत में लिखी है।

२६. समुल्लास–४ पृष्ठ १२०

खुशामदी मनुष्यों ने राजाओं की और धनाढ्यों की मति भ्रष्ट कर दी है जो बुद्धिमान् राजा और धनाढ्य लोग हैं इस प्रकार के मनुष्यों को पास भी नहीं बैठने देते।

२७. समुल्लास–४ पृष्ठ १३०

दो घड़ी रात से लेके सूर्योदय पर्यन्त प्रातः सन्ध्या के काल का नियम है तथा एक आध घड़ी दिन से ले के जब तारा न निकलें तब तक सायं सन्ध्या काल का नियम है।

२८. समुल्लास--४ पृष्ठ १३१

कर्म से उपासना और उपासना से ज्ञान श्रेष्ठ है ऐसी सदा बुद्धि रक्खे।

२९. समुल्लास--४ पृष्ठ १३९

द्विज कुल में दो बार विवाह का होना उचित नहीं।

३०. सब मनुष्यों के बीच में स्त्री और पुरुष जो मूर्ख होंय उनका यज्ञोपवीत भी हुआ होय तो उनको तोड़के शूद्र कुल में करदें।

३१. समुल्लास--४ पृष्ठ १५३

जो स्त्रियों को अत्यन्त बन्धन में रखते हैं यह भी बड़ा भ्रष्ट काम है क्योंकि स्त्रियों को बड़ा दुख होता है श्रेष्ठ पुरुषों का तो दर्शन भी नहीं होता और नीच पुरुषों से भ्रष्ट हो जाती हैं देखना चाहिए कि परमेश्वर ने सब जीवों को स्वतंत्र रचे हैं और उनको मनुष्य लोग विना अपराध से बन्धन में रख देते हैं वे बड़ा पाप कर्म करते हैं सो इस बात को सज्जन लोग कभी न करें यह बात मुसलमानों के राज्य से प्रवृत भई है आगे न थी कान्ती गांधारी और द्रौपद्यादिक स्त्रियाँ राज्य सभा में जहाँ कि राजा लोगों की सभा होती थी और वार्ता संभाषण करती थीं अपने पति को पंखा और जलादिकों से सेवा भी करती थीं और गार्गी मैत्रेयी इत्यादिक ऋषि लोगों की स्त्रियाँ भी सभा में शास्त्रार्थ करती थीं यह बात महाभारत और बृहदारण्यक उपनिषद् में लिखी है इसको अवश्य करना चाहिए। मुसलमान लोगों का जब राज्य भया था तब जिस किसी की कन्या वा स्त्री को पकड़ लेते और भ्रष्ट कर देते थे उसी

दिन से श्रेष्ठ आर्यावर्त्त देशवासी लोग स्त्रियों को घर में रखने लगे

सो इस बात को छोड़ ही देना चाहिए क्योंकि इस व्यवहार में सिवाय दुख के सुख कुछ नहीं जैसे दाक्षिणात्य लोगों की स्त्रियाँ वस्त्र धारण करती हैं वैसा ही पहिले था क्योंकि कभी वस्त्र अशुद्ध नहीं रहता सब दिन जैसे पुरुषों के वस्त्र शुद्ध रहते हैं इससे इस प्रकार वस्त्र धारण करना उचित है ।

३२. समुल्लास--४ पृष्ठ १५६

विना तप के अन्तःकरण शुद्ध नहीं होता और इन्द्रियों का जय भी नहीं होता इससे अवश्य तप करना चाहिए ।

३३. समुल्लास--४ पृष्ठ १६०

ऋणानि त्रीण्ययाकृत्य, मनो मोक्षे निवेशयेत् । अनयाकृत्य मोक्षन्तु सेवामानो व्रजत्यधः ।।२३।। में तीन ऋण अर्थात् । ऋषि, पितृ और देव ऋण इनको करके मोक्ष के वास्ते संन्यास में चित्त प्रविष्ट करे और इन तीनों न करके जो संन्यास की इच्छा करता है सो नीचे गिर पड़ता है उसको मोक्ष नहीं प्राप्त होता ।

३४. समुल्लास-५ पृष्ठ १६०

इन तीन ऋणों को उतार के मोक्ष अर्थात् संन्यास करने में चित्त देवें अन्यथा नहीं ।

३५. समुल्लास-५ पृष्ठ १६१

ब्रह्मचर्याश्रम से भी संन्यास लेवे तो भी कुछ दोष नहीं ।

३६. समुल्लास—५ पृष्ठ १६३

जिस पुरुष को विद्या, ज्ञान, वैराग्य पूर्ण जितेन्द्रियता होय और विषय भोग की इच्छा न होय उसी को संन्यास लेना उचित है अन्य को नहीं।

३७. संन्यासी किसी पदार्थ से सिवाय परमेश्वर के मोह न करे।

३८. समुल्लास-५ पृष्ठ १६४

केश सिर के सब वाल नख और श्मश्रु और दाढ़ी मोंछ इनको कभी न रक्खे।

३९. कुसुंवा रंग से रंगे वस्त्र पहिरें और गेरूवा मृतिका के रंग नहीं अथवा श्वेत वस्त्र धारण करें।

४०. एक वेर भिक्षा करे अत्यन्त भिक्षा में आसक्त न होय क्योंकि जो भोजन में आसक्त होगा सो विषयों में भी आसक्त होगा।

४१. समुल्लास-५ पृष्ठ १६५

जव गाँव में धूम न दीख पड़े मूसल व चक्की का शब्द न सुन पड़ै किसी के घर में अंगार न देख पड़े सब गृहस्थ लोग भोजन कर चुकें और भोजन कर के पत्री और सकोरे वाहर को फेंक देवे उस समय संन्यासी गृहस्थ लोगों के घर में भिक्षा के वास्ते नित्य जाँय और जो ऐसा कहते हैं कि हम पहिले ही भिक्षा करेंगे यह उनका पाखण्ड ही जानना, क्योंकि गृहस्थ लोगों को पीड़ा होती है।

४२. समुल्लास-५ पृष्ठ १६८

प्राणायामादिक अध्यात्म विद्या जो कोई नहीं जानता उसको

संन्यास ग्रहण का कुछ फल नहीं होता उसका संन्यास ग्रहण ही व्यर्थ है।

४३. समुल्लास-६ पृष्ठ १६३

ब्राह्मण क्षत्रिय वा वैश्यों के दुष्ट पुत्र वा कन्या मूर्ख हो जायें तब उनको शूद्रकुल में रख दें और शूद्रादिकों में जब द्विजत्य के अधिकार के योग्य होवें तब यथा योग्य द्विज का अधिकार देवें अर्थात् द्विज बना देवें तब जिस ब्राह्मण क्षत्रिय वा वैश्य के पुत्र वा कन्या एक दो तीन वा जितने शूद्र हो गये होंय उनके बदले पुत्र वा कन्याओं को राजा गिन २ के देवे तथा शूद्रादिकों को भी।

४४. समुल्लास-६ पृष्ठ २०२

वेदपाठी, ब्रह्मचारी, वानप्रस्थ और संन्यासी इनको साक्षी करने से पढ़ना पढ़ाना तप और विचार में विघ्न होगा इससे इनको साक्षी न करना चाहिए।

४५. समुल्लास-६ पृष्ठ २१३

रसोई आदिक सेवा सब लोगों की शूद्र ही करे।

४६. शूद्र ही सब कर देगा और खिलावे पिलावेगा परन्तु ब्रह्मणादिकों के सत्र पदार्थ सब पात्रादिक होवें शूद्र के घर के नहीं।

४७. समुल्लास-७ पृष्ठ २३१

प्राण जिससे ऊर्ध्व चेष्टा कर्त्ता है अपान जिससे अधो चेष्टा कर्त्ता है व्यान जिससे जल और अन्न को कण्ठ से भीतर आकर्षण कर

लेता है कर्म जिससे नेत्र को खोलता और मंदता है कृकल जिससे

छींकता है देवदत्त जिससे जम्भाई लेता है धनञ्जय जिससे शरीर को पुष्टि करता है और मरे पीछे शरीर को नहीं छोड़ता जो कि मुरदे को फुलाता है।

४८. समुल्लास-७ पृष्ठ २३२

सब जीवों को ईश्वर ने रचा तब विचार करके स्वतन्त्र ही रख दिये।

४९. समुल्लास-७ पृष्ठ २३३

स्थूल देह बाहर का है और जिसमें गाढ़ निद्रा होती है सत्त्व रजो और तमोगुण मिलके प्रकृति कहाती है जिसका नाम अव्यक्त परम सूक्ष्मभूत और प्रधान भी है वह कारण शरीर भी कहलाता है सो सब प्राणियों का व्यापक के होने से एक ही है दोनों के बीच में मध्यस्थ लिंग शरीर है चेतन एक जीव और दूसरा परमेश्वर ही है तीसरा कोई नहीं सो परमेश्वर है विभु व्यापक सर्वत्र एक रस जहाँ-जहाँ लिंग शरीर में विशिष्ट जीव रहता है वहाँ वहाँ परमेश्वर ही पूर्ण है सो लिंग शरीर में उसका सामान्य प्रकाश है और विशेष प्रकाश चेतन ही का जीव है जैसे दर्पण में सूर्य का विशेष प्रकाश होता है सो परमेश्वर का सदा संयोग रहता है वियोग कभी नहीं इससे परमेश्वर के अन्वय होने से वह चेतन नहीं है वह जीव कहलाता है और लिंग देह से परमेश्वर भिन्न होने से पृथक् भी है क्योंकि लिंग शरीर से युक्त जीव स्वर्ग नरक जन्म और मरण इत्यादिकों में भ्रमण करता है परन्तु परमेश्वर निश्चल है उसके साथ भ्रमण नहीं करते हैं और उसके गुण दोषों के भोग वा संगी कभी नहीं होते हैं कारण शरीर के ज्ञान लोभ और क्रोधादिक गुण जीव में आते हैं और स्थूल शरीर के शीतोष्ण क्षुधा

तृषादिक गुण भी जीव में आते हैं क्योंकि दोनों शरीरों के गुण क

भी संग जीव कर्त्ता है।

५०. समुल्लास-७ पृष्ठ २३७

परमेश्वर ने जीव रचे हैं सो केवल धर्माचरण और मुक्त्यादिक सुख के वास्ते रचे हैं और जीव पाप करता है सो अपनी मूर्खता ही से करता है वैसा ही दुःख भोगता है।

५१. समुल्लास-७ पृष्ठ २४६

जैसा जगत् का संयोग व वियोग होता है वैसा वेद विद्या का संयोग वा वियोग कभी नहीं होता।

५२. समुल्लास-७ पृष्ठ २३६

जगत् में सूर्य चन्द्र पृथिव्यादिक भूत वृक्षादिक स्थावर और मनुष्यादिक चर इनका रचन हम लोग देख सके।

५३. समुल्लास-७ पृष्ठ २४२

ईश्वर ने उनको आकाशवाणी की नांई सब शब्द सब मन्त्र उनके स्वर अर्थ और सम्बन्ध भी सुना दिये इससे वेदों का नाम श्रुति रक्खा है अथवा उनके हृदय में वेदों का प्रकाश कर दिय फिर उन्होंने अन्यों पर प्रकाश कर दिए।

५४. समुल्लास-७ पृष्ठ २४०

आर्यावर्त देश की प्रथम भाषा संस्कृत थी इसी को मुसलमान लोग जिन्न भाषा कहते हैं।

५५. समुल्लास-७ पृष्ठ २५०

जो देव लोग की भाषा होती तो वे क्यों पढ़ते और पढ़ाते क्योंकि देश भाषा तो व्यवहार से परस्पर आ जाती है इससे देव लोग की संस्कृत भाषा नहीं और जब ब्रह्मादिकों की भाषा नहीं तो आर्यावर्त देश वालों की कैसे होगी।

५६. जो मुसलमान लोग इसको जिन्न भाषा कहते हैं सो केवल ईर्ष्या में कहते हैं जैसे कि आर्यावर्त देश वासियों का नाम हिन्दू रख दिया सो यह संस्कृत जिन्न भाषा भी नहीं क्योंकि जिन्न तो भूत प्रेतपिशाचों ही का नाम है भूत प्रेत और पिशाच होते ही नहीं और जो होते होंगे तो लोक लोकान्तर में होते होंगे यहाँ नहीं फिर उनकी भाषा यहाँ कैसे आ सकेगी।

५७. सब देश भाषाओं का मूल संस्कृत है क्योंकि संस्कृत जब विगड़ती है तब अपभ्रंश कहाता है।

५८. समुल्लास-८ पृष्ठ २५३

परमाणु साठ मिलाके एक अणु रचा। दो अणु से एक द्वयणुक और तीन द्वयणुक से एक त्रसरेणु और अनेक त्रसरेणु को मिला के यह जो देख पड़ता है सब जगत् इसको रच दिया।

५९. समुल्लास-८ पृष्ठ २५९

वायु ४९ वा ५० कोस तक अधिक है उसके ऊपर थोड़ा है।

६०. समुल्लास-९ पृष्ठ २६३

साठ परमाणु से एक अणु बनता है दो अणु से एक द्वयणुक बनता है सो वायु द्वयणुक है इससे प्रत्यक्ष रूप नहीं देख पड़ता वायु से त्रिगुण स्थूल अग्नि रचा है इससे अग्नि में रूप देख पड़ता है उससे

चतुर्गुण जल और जल से पंचगुणा पृथ्वी रची है।

६२. समुल्लास-६ पृष्ठ २६३

लिंग शरीर और स्थूल शरीर का संयोग से प्रकट का जो होना उनका नाम जन्म है और लिंग शरीर तथा स्थूल शरीर के वियोग होने से अप्रकट का जो होना उसका नाम मरण है सो इस प्रकार से होता है कि जीव अपने संस्कारों से घूमता हुआ जल वा कोई औषधि में अथवा वायु में मिलता है फिर जैसा जिसके कर्मों का संस्कार अर्थात् सुख वा दुःख जितना जिसको होना अवश्य है परमेश्वर की आज्ञा के अनुकूल वैसे स्थान और वैसे ही शरीरों में मिल के गर्भ में प्रविष्ट होता है।

६२. छः विकार वाला शरीर है अस्ति नाम शरीर है १-जायते नाम जन्म का होना २-वर्द्धते नाम बढ़ना ३-विपरिणमते नाम स्थूल का होना ४-अपक्षीयते नाम क्षीण होना ५-विनश्यते नाम नष्ट का होना, नाम मृत्यु है ६, ए छः विकार शरीर के हैं फिर जब मरण होता है तब स्थूल और लिंग शरीर का वियोग होता है सो स्थूल शरीर से लिंग शरीर निकल के बाहर का जो वायु उसमें मिलता है फिर वायु के साथ जहाँ-तहाँ घूमता है कभी सूर्य के किरणों के साथ नीचे आता है अथवा वायु के साथ नीचे-ऊपर और मध्य में रहता है फिर उक्त प्रकार से शरीर धारण कर लेता है।

६३. समुल्लास-६ पृष्ठ २६०

ब्रह्मा ब्रह्मज्ञान पर्यन्त विद्या का जानने वाला अथवा ब्रह्मलोक का अधिष्ठाता और उस लोक को प्राप्त होने वाले प्रजापति और विश्वसृज जो कि धर्म विद्या से सबके पालन करने वाले वा सिद्ध जो कि परमाणु के संयोग वा वियोग करने वाले और उस विद्या वाले अथवा प्रजापति लोक के अधिष्ठाता वा उनको प्राप्त होने वाले धर्म

महान् बुद्धि अव्यक्त नाम प्रकृति यह सत्त्वगुण की उत्तम गति है यहाँ से आगे कर्म और उपासना का कोई फल भोग नहीं है सिवाय परमेश्वर के।

६४. समुल्लास-६ पृष्ठ २६४

दुःखों की अत्यन्त जो निवृति उसको मोक्ष कहते हैं कि सब दुःखों से छूट जाना और सदा आनन्द परमेश्वर को प्राप्त होके रहना फिर लेशमात्र भी दुःख का सम्बन्ध कभी नहीं होता सो केवल एक परमेश्वर के आधार में वह जीव रहता है और किसी का सम्बन्ध उसको नहीं सो परमेश्वर के योग से उस जीव में सर्व ज्ञातृ काल ज्ञान सब पदार्थों का गुण और दोष इनका सत्य बोध भी सदा रहता है।

६५. समुल्लास-६ पृष्ठ२६५

जब अत्यन्त प्रलय होगा तब कोई न रहेगा ब्रह्म का सामर्थ्य रूप और एक परमेश्वर के बिना सो अत्यन्त प्रलय तब होगा कि जब सब जीव मुक्त हो जायेंगे बीच में नहीं।

६६. समुल्लास-६ पृष्ठ २६६

प्रश्नः—मुक्ति एक जन्म में होती, है अथवा अनेक जन्म में ?

उत्तरः—इसका नियम नहीं क्योंकि जब मुक्ति होने का कर्म करता है तभी उसकी मुक्ति होती है अन्यथा नहीं प्रथम सृष्टि में कोई जीव पहिले ही जन्म में मुक्त हो गया होय इसमें कुछ आश्चर्य नहीं उसके पीछे जो कोई मुक्त भया होगा वा होता है और होवेगा सो बहुत जन्म ही में होगा मुक्त मोक्ष अत्यन्त पुरुषार्थ से होता है अन्यथा नहीं।

६७. समुल्लास-१० पृष्ठ २६६

देखना चाहिए कि मुसलमान वा अंग्रेज से छूने में दोष मानते

हैं और मुसलमानी वा अंग्रेज के देश की स्त्री से संग करते हैं और अपने पास घर में रख लेते हैं उससे कुछ भेद नहीं रहता यह वड़े अन्धकार की वात है कि मुसलमान और अंग्रेज जो भले आदमी उनसे तो छूत गिनना और वेश्यादिकों में नहीं छूत मानना यह केवल युक्तिशून्य वात है।

६८. समुल्लास-१० पृष्ठ ३०४

रसोई आदिक जो सेवा सो मूर्ख पुरुष जो शूद्र उसी का अधिकार है।

६९. समुल्लास-१० पृष्ठ ३०५

सव से भोजन में पाखन्ड कान्यकुब्ज का अधिक है क्यों दे जल भी पीते हैं तो जूते उतार के हाथ पैर धो के पीते हैं तव चौका दे के चने चवाते हैं सो बड़े दुःख पाते हैं।

७०. समुल्लास-११ पृष्ठ ३०६

संस्कृत के बिगड़ने से गिरीश लाटीन अंग्रेज अरव देश वालों की भाषा वन गई है।

७१. एक गोलड सटकर साहेब ने पहिले ऐसा ही निश्चय किया है कि जितनी विद्या व मत फैले हैं भूगोल में वे सब आर्यावर्त ही से लिये हैं और काशी में वालेण्टेन साहेब ने यही निश्चय किया है कि संस्कृत सव भाषाओं की माता है तथा दारा शिकोह बादशाह ने भी यह निश्चय किया है कि जो विद्या है सो संस्कृत ही है क्योंकि मैंने सव देशों की भाषाओं की पुस्तक को देखा तो भी मुझको बहुत सन्देह रह गये परन्तु जब मैंने संस्कृत देखा तव मेरे सब सन्देह निवृत्त हो गये अत्यन्त प्रसन्नता मुझको भई।

७२. मुसलमान की भाषा पढ़ने में अथवा कोई देश की भाषा

पढ़ने में कुछ दोष नहीं होता किन्तु कुछ गुण ही होता है। अपशब्द ज्ञानपूर्वके शब्दज्ञाने धर्मः। यह व्याकरण महाभाष्य का वचन है इसका यह अभिप्राय है कि अप शब्द ज्ञान अवश्य करना चाहिए अर्थात् सब देश देशान्तर की भाषा को पढ़ना चाहिए क्योंकि उनके पढ़ने से बहुत व्यवहारों का उपकार होता है और संस्कृत के ज्ञान का भी उनको यथावत् बोध होता है जितनी देशों की भाषा जानें उतना ही पुरुष को अधिक ज्ञान होता है क्योंकि संस्कृत के शब्द विगड़ के देश भाषा सब होती है इससे इनके ज्ञानों से परस्पर संस्कृत और भाषा के ज्ञान में उपकार ही होता है।

७३. समुल्लास-१२ पृष्ठ ३८७-३८८

क्योंकि जितने लड़ाई दंगा चोरी परस्त्रीगमनादिक इनसे ही उत्पन्न होते हैं इससे इनके ऊपर राज दण्ड देने में कुछ थोड़ा भी आलस्य न करे सदा तत्पर रहे। महाभारत में एक दृष्टान्त लिखा है कि सोने चाँदी और अच्छे पदार्थ धरे रहें, उसको कोई न स्पर्श करे तब जानना कि राजा है और धनाढ्य लोग लाखहां रुपैयों की दूकान का किवाड़ कभी नहीं लगावे और रात दिन कोई किसी का पदार्थ न उठावे तब जानना कि राजा है धर्मात्मा। इस वास्ते ऐसा उग्र दण्ड चाहिये कि सब मनुष्य न्याय में चलें अन्याय में कोई नहीं। जब स्त्री वा पुरुष व्यभिचार करें अर्थात् पर पुरुष से स्त्रीगमन करे परस्त्री से पुरुष जब उनका ठीक-ठीक निश्चय हो जाय तब स्त्री के ललाट में अर्थात भौं के बीच में पुरुष के लिंगेन्द्रिय का चिह्न लोहे का अग्नि में तपा के लगा दे तथा पुरुष के ललाट में स्त्री के इन्द्रिय का चिह्न लगा दे फिर जिसको सब देखा करें फिर उनकी भी खूब फजीहत करें और कुछ धन दण्ड भी करें पीछे उसी प्रकार से शिक्षा करें तब बहुत स्त्रियों के सामने उस स्त्री को कुत्तों से चिथवा डाले और पुरुष को बहुत पुरुषों के सामने लोहे के तख्त को अग्नि से तपा के सोवा दे उसके

ऊपर फिर उसके ऊपर घुमावे उसी पर्यंक के ऊपर उसका मरण हो जाय फिर कोई व्यभिचार कभी न करेगा। ऐसा दण्ड देख के वा सुनके और सर्कार कागद को वेचती है और बहुत-सा कागजों पर धन बढ़ा दिया है इस्से गरीब लोगों को बहुत क्लेश पहुँचता है सो यह वात राजा को करनी उचित नहीं क्योंकि इसके होने से वहुत गरीब लोग दुःख पाकर वैठे रहते हैं। क़चहरी में विना धन से कुछ वात होती नहीं। इस्से कागजों के ऊपर जो वहुत लगाना है सो मुझको अच्छा मालूम नहीं देता इसको छोड़ने से ही प्रजा में ग्रानन्द होता है क्योंकि थाने से ले के आगे आगे धन का ही खर्च देख पड़ता है न्याय होना तो पीछे फिर नाना प्रकार के लोग साक्षी झूठ सच बना लेते हैं। यहां तक कि सत्तू खाने को दे देओ और झूठी गवाही हजार वक्त दिवा देओ जो जैसा मनु में दण्ड लिखा है वैसा दण्ड चले तो खाने पीने के वास्ते झूंठी साक्षी देने को कोई तैयार नहीं होय अवाङ् नरकमभ्येति प्रेत्य स्वर्गाच्च हीयते इसका यह अभिप्राय है कि यह निश्चय हो जाय कि इसने झूंठ साक्षी दी तब उसकी जीभ कचहरी के बीच में काट ले वही अवाक् नाम जीभ रहित जो नरक भोग उसको प्रत्यक्ष होय क्योंकि राजा प्रत्यक्ष न्यायकर्त्ता है उसी वक्त उसको प्रत्यक्ष ही फल होना चाहिये और जितने अमात्य विचारपति राजघर में होवें उनके ऊपर भी कुछ दण्ड व्यवस्था रखनी चाहिये क्योंकि वे भी अत्यन्त सच झूंठ के विचार में तत्पर होके न्याय ही करने लगें देखना चाहिये कि एक के यहां अर्जीपत्र दिया उसके ऊपर विचारपति ने विचार करके अपनी बुद्धि और कानून की रीति से एक की जीत और दूसरे का पराजय जिसका पराजय भया उसने उसके ऊपर जो हाकिम होता है उसके पास फिर अपील करी सो प्रायः जिसका प्रथम विजय भया था उसको दूसरे स्थान में पराजय होता है और जिसका पराजय होता है उसका विजय फिर ऐसे ही जब तक धन नहीं चूकता दोनों का तब तक विलायत तक लड़ते ही चले जाते हैं प्रायः रहीं

लोग इस बात से हठ के मारे बिगड़ जाते हैं इससे क्या चाहिये कि विचार करने वाले के ऊपर भी दण्ड की व्यवस्था होनी चाहिये, जिससे वे अत्यन्त विचार करके न्याय ही करें ऐसा आलस्य न करें कि जैसा हमारी बुद्धि में आया वैसा कर दिया तुमको इच्छा होय तो तुम आओ अपील कर देओ ऐसी बातों से विचार पति भी आलस्य में आ जाते हैं और विचारपति को अत्यन्त परीक्षा करनी चाहिए कि अधर्म से डरते होंय और विद्या बुद्धि से युक्त होय काम क्रोध लोभ मोह भय शोकादिक दोष जिनमें न होय और अन्तर्यामी जो सब का परमेश्वर उससे ही जिनको भय होय और से नहीं सो पक्षपात कभी न करे किसी प्रकार से तब उस राजा की प्रजा को सुख हो सकता है अन्यथा नहीं और पुलिस का जो दरजा है उसमें अत्यन्त भद्र पुरुषों को रखना चाहिये क्योंकि प्रथम स्थान न्याय का यही है इससे ही आगे प्राय: वाद विवाद के व्यवहार चलते हैं।

७४. समुल्लास-११ पृष्ठ ३८६

इस स्थान में जो पक्षपात से अनर्थ लिखा पढ़ा जायेगा, सो आगे भी अन्यथा प्राय: लिखा पढ़ा जायेगा और अन्यथा व्यवहार भी प्राय: हो जायेगा इससे पुलिस में अत्यन्त श्रेष्ठ पुरुषों को रखना चाहिये अथवा पहिले जैसे चौकीदार मुहल्ले२ में एक रहता था उससे बहुधा अन्याय नहीं होता था जब से पुलिस का प्रबन्ध भया है तब से बहुधा अन्यथा व्यवहार ही सुनने आता है।

और गाय बैल भैंसी छेरी और भेंडी आदिक मारे जाते हैं इससे प्रजा को बहुत क्लेश प्राप्त होता है और अनेक पदार्थों की हानि भी होती है क्योंकि एक गैया १० सेर दूध देती है कोई ८ सेर छः ६ सेर पांच ५ सेर और दो २ सेर तक इसके मध्य छः ६ सेर नित्य दूध गिना जाय कोई दस मास तक दूध देती है, कोई छः मास तक उसका

मनुष्य आठ मास तक गिना जाता है सो एक मास भर में सवा चार मन दूध होता है उसमें चावल डाल के चीनी भी डाल दें तो सौ पुरुष तृप्त हो सकते हैं जो ऐसे ही पिये तो ८० पुरुष तृप्त हो जायेंगे और ८०० वा ६४० पुरुष तृप्त हो सकते हैं कोई गाय १५ दफे वियाती है कोई दस दफे उसका हमने १२ वक्त रख लिये से ९६०० सौ पुरुष तृप्त हो सकते हैं फिर उसके बछड़े और बछियां बढ़ेंगे उनसे बहुत बैल और गाय बढ़ेंगी एक गाय से लाखों मनुष्यों का पालन हो सकता है उसको मार के मांस से ८० पुरुष तृप्त हो सकते हैं फिर दूध और पशुओं की उत्पत्ति का मूल ही नष्ट हो जाता है सो बैल आर्यावर्त्त में पांच रुपैयों से आता था सो अब ३० से भी नहीं आता और कुछ गांव और नगर के पास पशुओं के चरने के वास्ते उसकी सीमा में भूमि रखनी चाहिये जिसमें कि वे पशु चरें जैसी दुग्धादिक से मनुष्य के शरीर की पुष्टि होती है वैसी सूखे अन्नादिकों से नहीं होती और बुद्धि भी नहीं बढ़ती इससे राजा को यह बात अवश्य करनी चाहिये जिन पशुओं से मनुष्य के व्यवहार सिद्ध होते हैं और उपकार होता है वे कभी न मारे जांय ऐसा प्रबन्ध करना चाहिये जिससे सब मनुष्यों को सुख होय वैसा ही प्रजास्थ पुरुषों को भी करना उचित है।

७५. समुल्लास-११ पृष्ठ ३९०-३९१

सो राजा से प्रजा जिससे प्रसन्न रहे और प्रजा से राजा प्रसन्न रहे यही बात करनी सब को उचित है देखना चाहिये कि महाभारत में सगर राजा की एक कथा लिखी है उसका एक पुत्र असमंजा नाम था उसको अत्यन्त शिक्षा की गई परन्तु उसने अच्छा आचार व विद्या ग्रहण नहीं की और प्रमाद में ही चित्त देता था सो उसकी युवावस्था भी हो गई परन्तु उसको शिक्षा कुछ न लगी। राजादिक श्रेष्ठ पुरुषों को उसके ऊपर प्रसन्नता नहीं भई फिर उसका विवाह

भी करा दिया एक दिन सज़ू में असमंजा स्नान के लिये गया था

वहां प्रजा के बालक आठ२ दस२ बरस के जल में स्नान करते थे और क्रीड़ा भी कर्त्ते थे सो उनमें से एक बालक बाहर निकला उसको पकड़ के असमंजा ने गहिरे जल में फेंक दिया सो बालक डूबने लगा तब कोई प्रजास्थ पुरुष ने बालक को पकड़ लिया उसके शरीर में जल प्रविष्ट होने से वह मूछित हो गया उसकी दशा को देख के असमंजा बहुत प्रसन्न भया और हंस के घर को चला गया कोई बालक उसके पिता के पास गया और कहा कि तुमारे बालक की यह दशा है राजा के पुत्र ने कर दी सुनके उसकी माता पिता और सब कुटुम्ब के लोग दुःखी भये उसको देख के फिर उस बालक को उठा के जहाँ सगर राजा की सभा लगी थी वहाँ को चले राजा सभा के बीच में सिंहासन पे बैठे थे सो उनको आते दूर से देख के झट उठ के उनके पास चले गये और पूछा कि इस बालक को क्या भया तब उनकी माता रोने लगी राजा ने देख के बहुत उनको धैर्य दिया कि तुम रोओ मत बात कह देओ कि क्या भया तब बालक का पिता बोला कि हमारे बड़े भाग्य हैं कि आपके जैसे राजा हम लोग के ऊपर हैं दूर से देख के प्रजा के ऊपर कृपा करके पूंछना और दौड़ के आना यह बड़ा प्रजा का भाग्य है इस प्रकार का राजा होना फिर राजा ने पूंछा कि तुम अपनी बात कहो तब उसने राजा को कहा कि एक तो आप हैं और एक आपका पुत्र है जो कि अपने हाथ से ही प्रजा को मारने लगा और जैसा भया था वैसा सत्य२ हाल राजा से कह दिया तब राजा ने वैद्यों को बोला के उसका जल निकलवा डाला और ओषधों से उसी वक्त स्वस्थ बालक हो गया फिर सभा के बीच में बालक उसकी माता पिता और जिसने बालक निकाला था वह भी वहां था फिर राजा ने सिपाहियों को आज्ञा दी कि असमंजा की मुसकें चढ़ा के ले आओ। सिपाही लोग गये और वैसे ही उसको बांध के ले आये। असमंजा की स्त्री भी संग२ चली आई और सभा में खड़े

कर दिये राजा ने पुत्र की स्त्री से पूछा कि तू इसके साथ जाने में प्रसन्न है वा नहीं तब उसने कहा कि अब जो दुःख वा सुख होय परन्तु मेरे अभाग्य से ऐसा पति मिला सो मैं साथ ही रहूँगी, पृथक् नहीं। तब राजा ने असमंजा से कहा कि तेरा कुछ भाग्य अच्छा था कि यह बालक मरा नहीं जो यह मर जाता तो तुझ को बुरे हवाल से चोर की नांई मैं मार डालता परन्तु तुझ को मैं मरण तक का बनवास देता हूं सो तू कभी गांव में वा नगर में अथवा मनुष्यों के पास खड़ा रहा वा गया तो तुझ को चोर की नांई मार डालेंगे इससे तू ऐसे बन में जा के रह कि जहां मनुष्य का दर्शन भी न होय सिपाहियों से हुकम दे दिया कि जाओ तुम घोर वन में इन दोनों को छोड़ आओ उसको न वस्त्र दिये अच्छे२ न सवारी दी न अन्न दिये किन्तु जैसे सभा में खड़े थे वैसे ही छोड़ आये।

७६. समुल्लास-११
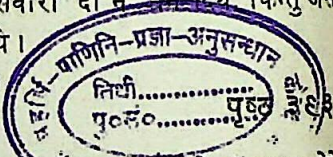
आर्यावर्त्त देश में ऐसे २ राजा और प्रजास्थ श्रेष्ठ पुरुष होते थे सो इस वक्त आर्यावर्त्त देश में ऐसे भ्रष्टाचार हो गये हैं कि जिनकी संख्या भी नहीं हो सकती, ऐसा सर्वत्र भूगोल में देश कोई नहीं, ऐसा श्रेष्ठ आचार भी किसी देश में नहीं था परन्तु इस वक्त पाषाणादिक मूर्तिपूजनादिक पाखण्डों से, चक्रांकितादिक सम्प्रदायों के वाद विवादों से, भागवतादिक ग्रन्थों के प्रचार से ब्रह्मचर्याश्रम और विद्या के छोड़ने से, ऐसा देश बिगड़ा है कि भूगोल में किसी देश की नहीं जैसी कि दुर्दशा महाभारत के युद्ध के पीछे आर्यावर्त्त देश की भई है। सो आजकल अंगरेजों के राज्य में कुछ २ सुख आर्यावर्त्त देश में भया है सो इस वक्त वेदादिक पढ़ने लगें ब्रह्मचर्याश्रम चालीस वर्ष तक करें, कन्या और बालक सब श्रेष्ठ शिक्षा और विद्या वाले होवें इन मतमतान्तरों के वाद विवाद आग्रह को छोड़ें सत्य धर्म और परमेश्वर की उपासना में तत्पर होवें तो इस

देश की उन्नति और सुख हो सक्ता है अन्यथा नहीं।

७७. समुल्लास-११ पृष्ठ ३९४

पश्चात्ताप जो होता है किये भये पापों का निवर्त्तक नहीं होता किन्तु आगे कर्त्तव्य पापों का निवर्त्तक होता है।

७८. समुल्लास-११ पृष्ठ ३९४-३९५

वर्णाश्रम की सत्य व्यवस्था शास्त्र की रीति से उसका छेदन करता है सो सब मनुष्यों के अनुपकार का कर्म है यह तृतीय समुल्लास में विस्तार से लिख दिया है वहीं देख लेना यज्ञोपवीत केवल विद्यादिक गुणों और अधिकार का चिह्न है उसका तोड़ना साहस से इससे भी अत्यन्त मनुष्यों का उपकार नहीं होता किन्तु विद्यादिक गुणों से वर्णाश्रम का स्थापन करना शास्त्र की रीति से, इससे ही मनुष्यों का उपकार हो सकता है। संसाराचार की रीति से नहीं वे ब्राह्मणादिक वर्ण वाचक जो शब्द हैं उनको जातिवाचक ब्राह्मण लोग जान के निषेध कर्त्ते हैं सो केवल उनको भ्रम है किन्तु शास्त्र की रीति से मनुष्यादिक जाति वाचक शब्द हैं सो मनुष्य वृक्षादिक की एकता कोई नहीं कर सकता सो मनुष्यादिक शब्द जातिवाचक शास्त्र में लिखे हैं सो सत्य ही हैं और खाने पीने से धर्म किसी का वढ़ता नहीं और न किसी का घटता इसमें भी अत्यन्त जो आग्रह करना कि सब के साथ खाना अथवा किसी के साथ नहीं वही धर्म मान लेना यह भी अनुचित वात है किन्तु नष्ट भ्रष्ट संस्कार हीन पदार्थों के खाने और पीने से मनुष्य का अनुपकार होता अन्यत्र नहीं।

७९. समुल्लास-११ पृष्ठ ३९५

और वार्षिक उत्सवादिकों में मेला करना इसमें भी हमको

अत्यन्त श्रेष्ठ गुण मालूम नहीं देता क्योंकि इसमें मनुष्य की बु
बहिर्मुख हो जाती है और धन भी अत्यन्त खर्च होता है केव
अंगरेजी पढ़ने से संतोष कर लेना यह भी अच्छी बात उनकी नहीं
किन्तु सब प्रकार की पुस्तक पढ़ना चाहिये। परन्तु जब तक वेदादि
सनातन सत्य संस्कृत पुस्तकों को न पढ़ेंगे तब तक परमेश्वर
कर्त्तव्य और अकर्त्तव्य विषयों को यथावत् नहीं जानेंगे इससे
पुरुषार्थ से इन वेदादिकों को पढ़ना और पढ़ाना चाहिये इससे
विघ्न नष्ट हो जायेंगे अन्यथा नहीं।

वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है—स्वामी दयानन्द

दयानन्द संस्थान द्वारा

प्रकाशित ग्रन्थ

१. ऋग्वेद (६ मण्डल) महर्षि दयानन्द कृत भाष्य
मूल्य : ७१ रु०

ग्रंथ १०×१५ इंच के ६०४ पृष्ठों में है। सुनहरी कपड़े की जिल्द; वजन लगभग ३ किलो है।

२. यजुर्वेद-सामवेद भाष्य—पृष्ठ ४८०। साइज १०×१५ इंच। वजन लगभग २ किलो। भाष्यकार महर्षि दयानन्द सरस्वती — आचार्य वैद्यनाथ शास्त्री।
लागत मूल्य : ७१ रु०

३. अथर्ववेद भाषा भाष्य। १०×१५ इंच के ४५६ पृष्ठ।
सुनहरी जिल्द मूल्य : ७१ रु०

तीनों वेद भाष्य बढ़िया आर्ट पेपर पर भी मिल सकते हैं।
प्रत्येक का मूल्य : १५१ रु०

४. यजुर्वेद भाष्य महर्षि दयानन्द कृत सजिल्द २० रु०
कपड़े की जिल्द २५ रु०

५. अथर्ववेद परिचय: पं० विश्वनाथ विद्यामार्तण्ड।
मूल्य : ५ रु०

६. अथर्ववेदीय चिकित्सा शास्त्र : विद्यामार्तण्ड स्वामी ब्रह्ममुनिजी; कपड़े की सुनहरी जिल्द मूल्य : १० रु०

७. वैदिक सत्संग पद्धति (हिन्दी)
नया संस्करण (सजिल्द) मूल्य : १ रु० ६५) सैकड़ा

८. वैदिक अर्थनीति—श्रीपाद दामोदर सातवलेकर
पृष्ठ ३२ (रायल साइज) मूल्य ४० पैसे

९. वैदिक अर्थ शास्त्र-परिचय : पं० भारतेन्द्र नाथ
मूल्य : १ रु०

१०. क्या वेद में मांस भक्षण का विधान है ?
[illegible] मूल्य

११. वेद और बाइबिल—दीनानाथ सिद्धान्तालंकार
मूल्य : ५.

१२. मोक्ष का वैदिक मार्ग : आचार्य वैद्यनाथ व योगिराज पथिक मूल्य : १

१३. वैदिक ज्ञान सुधा : पं० हरिश्चन्द्र जी वर्मा
मूल्य : १

१४. वैदिक अध्यात्म ज्योति : स्वामी अनुभवानन्द, स्वामी सत्यानन्द मूल्य : १

१५. वैदिक सिद्धान्त : पं० यशःपाल सिद्धांतालंकार
मूल्य :

१६. वेदामृत ' पृष्ठ ४०० से अधिक मूल्य :

१७. शतक-त्रयी : पं० शिवदयालु जी आर्य
मूल्य १ रु० ४०

१८. उपनिषद्-वचनामृत : पं० दीनानाथ सिद्धान्तालंकार मूल्य : १

१९. ईशोपनिषद् : पं० हरिशरण सिद्धांतालंकार
मूल्य : १

२०. उपनिषद् त्रयी : पं० शिव दयालु आर्य
मूल्य : १

२१. शतपथ ब्राह्मण प्रथम काण्ड : स्वामी समर्पणानन्द जी मूल्य : १५

२२. बृहस्पति राजधर्म सूत्र : पं० शिव दयालु आर्य
मूल्य : १

२२ वेदों का यथार्थ स्वरूप पं० धर्मदेव विद्यामार्तण्ड
पृष्ठ ३७६—सजिल्द मूल्य

२३. गायत्री शतक : पं० शिवदयालु आर्य मूल्य : २

४. ईश्वर भक्ति : स्वामी सर्वदानन्द सरस्वती
मूल्य : १ रु० ४० पै०।
५. माँ गायत्री : तृतीय संस्करण मूल्य १ रु० ४० पै०।
६. धर्म का मार्ग : पं० सुरेशचन्द्र वेदालंकार
मूल्य : १ रु० ४० पै०।
. अमृतपथ : पं० दीनानाथ सिद्धान्तालंकार,
सजिल्द मूल्य : ५ रु०।
. नारायण अध्यात्म सुधा : श्री महात्मा नारायण स्वामी जी
मूल्य : १ रु०।
९. अध्यात्म योग : पं० दीनानाथ सिद्धान्तालंकार
(कपड़े की जिल्द) मूल्य : ६ रु०।
. कल्याण मार्ग : श्री जगन्नाथ पथिक मूल्य : २५ पैसे।
. यज्ञ प्रसाद: महात्मा आनन्द स्वामी जी
मूल्य : ६० पैसे।
. संक्षिप्त महाभारत : स्व० पं० सन्तराम मूल्य : ८)
१. उपनिषद् कथा माला। महात्म नारायण स्वामी जी द्वारा लिखित अनुपम आध्यात्मिक ग्रंथ मूल्य १)
. सत्यार्थ प्रकाश : प्रचार संस्करण मूल्य ४ रु०
. व्यवहार भानु : स्वामी दयानन्द सरस्वती,
मूल्य : ४० पैसे, ३०) सैकड़ा
. स्वमन्तव्यामन्तव्यप्रकाश. मूल्य : १५ पैसे
. मूर्ति पूजा की हानियां मूल्य : २० पै० १५) सैकड़ा
. आर्योद्देश्य रत्नमाला मूल्य २० पैसे
. स्वामी दयानन्द जीवन चरित्र, कपड़ की जिल्द, बड़ा जीवन चरित्र मूल्य : ६ रु०, साधारण अजिल्द [छोटा] १ रु० ४० पैसे
. स्वामी श्रद्धानन्द : जीवन चरित्र मूल्य : १) ४०.
. ज्योति स्तम्भ मूल्य ६ रु०।

४२. आर्य क्रान्तिकारी : श्री बनारसी सिंह मूल्य ३

४३. विश्व को आर्य समाज का सन्देश : पं० भारतेन्द्रना
मूल्य : ३० पै०, २५ रु० सैकड़

४४. बोध रात्रि (महाकाव्य) मूल्य : ५ रु

४५. गीत मंजरी (नया तीसरा संस्करण) मूल्य : २

४६. आर्य समाज के नियम : पं० मोहनलाल विष्णुला
पंड्या मूल्य : १ रु० ४० पै

४७. आर्य समाज क्या मानता है ? श्री मदनमोहन
विद्यासागर मूल्य : २० पैसे, १५ रु० सैकड़

४८. श्रद्धांजलियाँ मूल्य : १ रु० ४० पै

४९. महर्षि दयानन्द की विशेषताएँ : महात्मा
नारायण स्वामी, मूल्य : २० पैसे, १५ रु० सैकड़

५०. आर्य समाज की विचारधारा : पं० गंगाप्रस
उपाध्याय मूल्य : २० पैसे, १५ रु० सैकड़

५१. आर्य समाज की मान्यताएँ : पं० रामचन्द्र देहल
मूल्य : २० पैसे, १५ रु० सैकड़

५२. विश्व को वेद का सन्देश भारतेन्द्रनाथ
मूल्य २० पैसे १५ सैक

५३. आर्य समाज के दस नियम व्याख्या सहित
२० पैसे १५ सैक

५४. निमंत्रण आर्य समाज का : स्व० पं० गंगा प्र
उपाध्याय, मूल्य २० पैसे १५ रु० सैकड़

५६. आर्य समाज के १०० वर्ष : पं० भारतेन्द्र नाथ,
मूल्य : २० पैसे, १००रु० हजार १५ रु० सैकड़

सर्व सत्य का प्रसार कर, सब को ऐ[illegible] में करा, द्वेष छुड़ा, परस्पर में दृढ़ प्री[illegible] करा के सब से सब को सुख लाभ पहुंच[illegible] लिए मेरा प्रयत्न और अभिप्राय है।

सर्वशक्तिमान् परमात्मा की कृपा सहाय और आप्त जनों की सहानुभूति से यह सिद्धान्त सर्वत्र भूगोल में शीघ्र प्रवृत्त हो जावे।

जिस से सब लोग सहज से धर्मार्थ, काम, मोक्ष की सिद्धि कर के सदा उन्नत और आनन्दित होते रहें। यह मेरा मुख्य प्रयोजन है।

—महर्षि दयानन्द सरस्वती